॥ ॐ ॥

वैदिक ब्रह्म विचार

लेखक—

अनन्त श्रीविभूषित दण्डीस्वामी
नारायणतीर्थजी महाराजके शिष्य
श्रीदण्डीस्वामी रामतीर्थजी

प्रकाशक—

लाला मुरारिलाल सोनी,
मुहल्ला सोनियां, लुधियाना।

पुस्तक प्राप्तिस्थान—

अमोलकराम ज्योतिषी
मन्दिर सोनियां, लुधियाना।



मूल्य स्वाध्यायहै।

पहिला संस्करण ११०० ग्यारह सौ वि० सं० २०११
दूसरा संस्करण १००० एकसहस्र वि० सं० २०१२

पुस्तक प्रकाशनमें सहयोग देनेवाले—

१०० रुपये लाला मुरारिलाल मायादेवी सोनी।
१०० रु० लाला चरणदास रेशमदेवी सोनी।
१०० रु० लाला नन्दकिशोर फूलाँदेवी वहल।
२५ रु० लाला इन्द्रपाल सत्यादेवी धीर।
५० रु० लाला अमरनाथ लाजवन्तीदेवी पुरी।
५० रु० लाला ठाकुरदास यशोदादेवी मुर्गई।
२० रु० लाला वरकतराम पूर्णदेवी मुर्गई।
२५ रु० पं० रामरत्न लीलादेवी रिया० स्टेशन मा०।
२५ रु० लाला तेलूराम पार्वतीदेवी कौड़ा।
१५ रु० डा० बनारसीदास धनदेवी सोनी।
२५ रु० पं० ओंप्रकाश राजकुमारीदेवी कालिया।
२५ रु० रामनारायण राजकुमारीदेवी ज्योतिषी।
२५ रु० लाला जगन्नाथ सावित्रीदेवी भक्कु।
१५ रु० अमोलकराम राजदेवी ज्योतिषी।
१५ रु० पं० अमोलकरामके पुत्र प्रियव्रत सत्यव्रत।

ये धर्मात्मालोग, वेदोंके प्रचारमें सहायकहोनेसे धन्य, वादके योग्यहैं। लेखक

प्राक्कथन

प्रिय पाठकगण। भारतमें अध्यात्मज्ञानकी विचारधाराएं पहलेसेही दो रूपोंमें बहती आरहीहैं—और अबभी बहतीही जारहीहैं। इनमेंसे एक पक्षकी धारणा यहहै कि सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ब्रह्म व्यापकहै और उसका लोकविशेष ब्रह्मलोकभी विद्यमानहै। परन्तु दूसरेका कथनहैकि सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ब्रह्म व्यापकहीहै, उसका लोकविशेष ब्रह्मलोक कहना यह मिथ्या प्रलापहै।एक यह मानरहाहै कि जीवकी अपने स्वरूपमें अवस्थान करनारूपी अर्थात् स्वस्वरूपावस्थिति विदेहकैवल्यमुक्ति होतीहै। परन्तु दूसरेकी मान्यताहैकि जीवके संनिहित यानी अन्दरमेंही अन्तर्यामी ब्रह्महै अतः उसकी समीपता प्राप्त करनीही जीवकी मोक्षावस्थाहै इससे भिन्न विदेहकैवल्य नामकी कोई वस्तुही नहींहै। एकका सिद्धान्तहैकि जीव, कर्म करनेमें स्वतंत्रहै और उसका फल भोगनेमें परतंत्रहै। परन्तु दूसरेका मतहैकि इसके समीप अन्तर्यामी ब्रह्म इसको कर्म करनेकेलिए प्रेरणाकरताहै, अतः यह कर्म करनेमेंभी स्वतंत्र नहींहै। एकने यह मानलियाहै कि जीव, अंशी सच्चिदानन्दब्रह्मका अंशहोनेसे सच्चिदानन्द स्वरूपहीहै। परन्तु—इसके विपरीत दूसरेका विचारहैकि जीव, अंशी सच्चिदानन्दब्रह्मका अंशहोनेपरभी सत्‌चित् रूपतो है, किंतु यह आनन्दरूप नहींहै। इसप्रकारकी भिन्न २ विचार

धाराहै । क्योंकि सन्देहके हेतु ऐसे मंत्र तथा श्रुतियां बनरहीहैं । जैसाकि मुण्डक उपनिषद् मुण्डक ३ का यह पहला मंत्रहै--

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृत्तं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥

यह मंत्र श्वेताश्वतर उपनिषदके चौथे अध्यायमेंभीहै । इसमंत्रका किसी २ विद्वान्ने ऐसा अर्थ कियाहैकि एकसाथरहनेवाले तथा परस्पर सख्यभावरखनेवाले दो पत्ती (जीवात्मा और उपास्यपरमात्मा)एकही शरीररूपी वृत्तका आश्रय लेकर रहतेहैं, उन दोनोंमें एक उस वृत्तके कर्मरूप फलोंका स्वादलेकर उपभोगकरताहै और दूसरा न खाता हुआ केवल देखताहै । इस मंत्रकेद्वारा यह सन्देह होताहैकि यदि शरीर भेदसे जीवभेदके समान, उपास्यईश्वरभी प्रत्येक शरीरमें निवासकरताहै तबतो जितने शरीररूपी वृत्तहैं उतनेही जीवरूपी पत्तीतो हैं ही किंतु उपास्य ईश्वरभी अनेकोंही मानने पड़ेंगे। परन्तु ऐसा माननेकेलिये कोई तैयार नहींहै । संशयका दूसरा कारण-''तत्त्वमसि' यह वाक्यहै । यह वाक्य, छान्दोग्य उपनिषदके छठे अध्यायमें नौवार आचुकाहै । इसमें तत् त्वं असि ये तीन पदहैं, इनमेंसे, वेदांतकी प्रायः सभी प्रक्रियाओंके अनुसार, तत्पदका वाच्यार्थ ईश्वरहै और तत्पदका लक्ष्यार्थ ब्रह्म मानागयाहै । परन्तु तत्पदके वाच्यार्थ ईश्वरका व्यापकरूप समझमें नहीं आरहाहै । अन्यान्य कई संन्यासियोंने-

भी मेरेसे कहाहैकि तत्पदका लच्यार्थ ब्रह्म तो हमारे अनुभवमें आरहाहै, परन्तु तत्पदका वाच्यार्थ ईश्वर हमारी समझ में नहीं आरहाहै। इसके उत्तरमें मैं उन्हें इतनाही कहसका जितनाकि वे पहलेसेही वाच्यार्थको जानरहेथे, उससे अधिक नहीं कहसका। क्योंकि इस विषयमें मैं स्वयंही संशय ग्रस्त था। परन्तु दीर्घकालिकी विचारके अनन्तर मैंने अब इस प्रकारकी अन्य शंकाओंकाभी समाधान करलियाहै।

जिससे कि वेद शास्त्रोंके विपरीत अपना एक नयाही मत चलानावह कलहका कारण होजाताहै, परन्तु वेद शास्त्रोंके अ--विरुद्ध अपने विचारोंको प्रकट करना किसी अनर्थका कारण नहींहै। ऐसेतो ऐसे विषयोंपर शंका समाधानके रूपमें पहलेसे अन्यभी बहुधा ग्रंथ बनेहुएहैं, तोभी इन विषयोंका संग्रहरूप कोई ग्रंथ मेरी दृष्टिगोचर नहीं हुआहै। अतः मैं इन विषयोंको लेखद्वारा "वैदिक ब्रह्म विचार" नामक पुस्तकमें प्रकट कररहाहूं। जिससे कि मंत्रात्मक वेद तथा मंत्र ब्राह्मणात्मक ईशावास्य आदि बृहदारण्यक पर्यन्त ये दश उपनिषदही सांप्रदायिक न होनेके कारण, सबकेलिये ही संमान्यहैं, अतः इनके आधारपरही ब्रह्मका विचार कियाजाएगा। और इस पुस्तकमें आएहुए विषयोंके समर्थक अन्यान्य उपनिषदों तथा मनुस्मृति आदि अन्य ग्रन्थोंके भी कुछ प्रमाणोंको ग्रहण कियाजावेगा। इसमें, यथा संभव हिंदीभाषामें संस्कृतभाषाके सुखवोधार्थ

विभक्त्यन्तपद और क्रियाका पूर्णरूप लिखा जावेगा। विभक्ति-अंतपदका रूप, सूर्याय-सूर्यकेलिए, प्राप्यः—प्राप्तकरनेकेयोग्यहै, ऐसा होगा। क्रियाका रूप—स्मरामि-स्मरणकरताहूँ, गच्छति-जाताहै, पठति-पढ़ताहै, भवति-होताहै या होजाताहै, उच्यते-कहाजाताहै, क्रियते-कियाजाताहै, ऐसा होगा। इस पुस्तकमें, १—ब्रह्मका स्वरूप तथा उसका निर्गुणरूप २—सगुण ब्रह्म ३—उपास्य ब्रह्म ४—प्राप्य ब्रह्म ५—प्राज्ञात्मा ईश्वर अन्तर्यामी ६—आदित्यात्मा ब्रह्म ईश्वर अन्तर्यामी ७—अंशांशी ब्रह्म ८—ज्ञेय ब्रह्म—इसमें, तत्त्वमसि आदि वाक्योंका अर्थ विस्तार—पूर्वक स्पष्ट शब्दोंमें दर्शांयागयाहै। इसप्रकार ये आठ प्रकरण होवेंगे। जिन्होंके अध्ययनसे उपासक या भक्तजन, उपास्य ब्रह्मकी उपासनाद्वारा धर्म अर्थ काम और निष्काम भक्तिसे अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञान प्राप्त करसकेंगे, और जिज्ञासुलोग, ज्ञेयब्रह्मके-ज्ञान द्वारा मोक्ष लाभकरेंगे।

भवदीय—**दण्डी संन्यासी रामतीर्थ**
मन्दिर सोनियाँ (लुधियाना) शीतकालमें,
रामभवन, भूपतवाला हरिद्वार (उष्णकालमें)

अशुद्ध और शुद्ध पाठ

अशुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
दुरवगाह्यहै ।	४	१५	दुर-वगाह्यहै ।
प्रजाति	१६	१७	प्रजापति
ससृजत	२०	५	मसृजत
निशेष	३०	५	विशेष
स्वमवात्मानं	१३४	७	स्वमेवात्मानं

प्रकरणसूची—



श्रीः १०८ दण्डी स्वामी रामतीर्थजी



वैदिक ब्रह्म विचार

ओं नमः सच्चित्सुखाय ब्रह्मणे सूर्याय ।
श्री गुरुभ्यो देवेभ्यो नमो नमः ॥

ॐ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ जो ईश्वर निश्चयही सबसे पहले ब्रह्मानामक ऋषिको उत्पन्नकरताहै, और जो निश्चयही उस ब्रह्माको वेदोंका ज्ञानप्रदानकरताहै, उस परमात्मज्ञान बिषयक बुद्धिको प्रकटकरनेवाले देव ईश्वरको मैं मोक्षकी इच्छावालासाधक शरणरूपमें ग्रहणकरताहूँ ।

१—ब्रह्मका स्वरूप तथा उसका निर्गुणरूप

ब्रह्मकास्वरूप सत्यज्ञानानन्दहै, और वह महाप्रलयकी मध्य अवस्थामें अनन्तहोनेसे चतुष्पाद्विशुद्ध निरपेक्षनिर्गुणब्रह्महै ।

तैतरीय उपनिषद् ब्रह्मानन्दवल्लीके प्रथम अनुवाकमें श्रुति—
ॐ ब्रह्मविदाप्नोति परम् । व्याकरणकेद्वारा ब्रह्म नाम व्यापक या बड़ेकाहै । ब्रह्मको जाननेवाला परको प्राप्तहोताहै, अर्थात् व्यापकको जाननेवाला व्यापक या बड़ा होजाताहै । यह श्रुतिका अर्थहै । अब यह जिज्ञासा या जाननेकी इच्छा हुई कि ब्रह्म तो किसी वस्तुका नामहै । जिस वस्तुका ब्रह्म यह नामहै उसका स्वरूप क्याहै । क्योंकि व्यवहारमें, नाम और नामीका भेद देखनेमें आरहाहै । प्रत्येक वस्तुका नाम भिन्नहै और नामी या रूप अलगहै । उदाहरणकेलिये जलको ही लेलीजिए । जल यह नाम वाणीमेंहै और इसका नामी रूप आकार या अर्थ बाहर-है—जोकि पान किया जाताहै । इसीप्रकार ब्रह्म इस नामकाभी नामी या रूप होना चाहिए । इसप्रश्नकाउत्तर अगले मन्त्रसे दिया-गयाहै । मंत्रहै—

"सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म" सत्य नाम उस वस्तुकाहै जो वस्तु भूत, भविष्यत् और वर्तमान, इन तीनोंही कालोंमें बनीरहे, वास्तवमें वही सत्यहै । ज्ञान नाम चित् या प्रकाश काहै, अनन्त नाम अन्तसेरहितकाहै, और ब्रह्म नाम व्यापक-काहै । मंत्रमें सत्य और ज्ञान पदसे ब्रह्मका स्वरूप कहागयाहै, अनन्त पद हेतु वाचक नामहै या विशेषणहै । इस समस्त वाक्य का यह अर्थहुआ कि सत्य ज्ञानरूपी जो वस्तुहै वह अनन्तहोने-

से ब्रह्म नाम व्यापकहै। प्रश्न–अन्त किसे कहतेहैं। उत्तर–अन्त नाम, भेद परिच्छेद खण्ड नाश अल्प सीमा या छोटेकाहै। किसी–वस्तुके अल्पहोनेमें, स्वगतभेद, सजातीयभेद और विजातीयभेद ये तीन प्रकारके भेदही कारण होतेहैं।

१—स्वगतभेद—अपने अवयवों या अंगोद्वारा जो अपनेमें भेदहै वह स्वगतभेद कहलाताहै। जैसाकि मनुष्यका अपने कर चरण या हाथ पैर आदि अंगोंद्वारा अपनेमें जो भेदहै, वह स्वगतभेदहै। जब हम कहेंगे कि यह हाथ है यह पैरहै इसप्रकार प्रत्येक या हरएक अङ्गका अलग २ नाम लेंगे तब उसका मनुष्य नाम न रहा वह अपने अंगोंमें बटजानेसे अन्तवाला या अल्प होगया, क्योंकि मनुष्य नाम तो अंगोंके समूहकाहै किन्तु हाथ पैर आदि एक एक अंगकानामहै। यह स्वगत भेद अवयव या हिस्सेवाली वृक्ष आदि सभी वस्तुओंमें रहताहै।

२—सजातीयभेद—समान जातिवालेसे जो भेदहै वह सजातीयभेदहै। जैसाकि मनुष्यका मनुष्यसे भेदहै। क्योंकि प्रत्येक मनुष्यका रूप भिन्न २ है, इसी रूप भेदकेकारण मनुष्य प्रत्येक मनुष्यमें व्यापक न रहनेसे अन्तवाला या छोटा होगया। यह सजातीयभेदहै। यह सजातीयभेद, समानजातिवाले वृक्ष आदि प्रत्येक व्यक्तिमें व्याप्तहै और होगा।

३—विजातीयभेद–भिन्न जातिसे जो भेदहै। वह विजातीयभेदहै। जैसाकि मनुष्यका अपनेसे भिन्न जातिवाले पशु

आदि सभी जातियोंसे भेदहै। क्योंकि मनुष्यभी जातिभेदके कारण, सभी जातियोंमें व्यापक न होनेसे अन्तवाला या सीमित होगया। यह विजातीयभेदहै। यह भेदभी भिन्न जाति-वाले मनुष्य आदि सभी जातियोंमें रहताहै। परन्तु सत्य ज्ञान या सत् चित् वस्तु "एषो ऽकलो ऽमृतो भवति" यह अवयव रहितहै और अविनाशीहै—इस प्रश्नउप० की छठे प्रश्नकी श्रुतिसे निरवयवहै। अतः वह अवयव या अङ्गों वाला न होनेसे उसमें स्वगत भेद न होनेसे इसकेद्वारा अन्तवाला नहीं-है। उसकी समानतामें दूसरा सत्य ज्ञान न होनेपर उसमें सजातीयभेद न होनेसे वह सजातीयभेदकेकारण अन्तवाला या खण्डित नहींहै। सत्य ज्ञानसे भिन्न, माया या इच्छाशक्ति नहींहै, अतः वह विजातीयभेदकेकारण अन्तवाला नहींहै। इस-प्रकार सत्य ज्ञानरूपी वस्तु, स्वगत सजातीय और विजातीय-भेदरहितहोनेसे अनन्तहै इसीसे वह ब्रह्म या व्यापकहै।

जिससेकि वेदोंका अभिप्राय अतिगंभीर और दुखगाह्यहै कि अधिकारीही ब्रह्मविद्याको प्राप्तकरे। इसीलिए श्रुतियोंमें ब्रह्मका कहींपर सत् रूप और कहींपर सत्य ज्ञान रूप तथा कहींपर केवल आनन्द रूप तो दियागयाहै, परन्तु श्रुतियोंमें ब्रह्मका, सत्य ज्ञान आनन्दरूप या सच्चिदानन्दरूप, ऐसा सामूहिक रूप कहींपरभी नहीं देखागयाहै। (ऐसेही नानाप्रकारसे सृष्टिकी उत्पत्तिके कथनकोभी समझलेनाचाहिये) जिससेकि ब्रह्मका,

केवल सत्य और ज्ञानरूपही स्वरूप नहींहै, किंतु उसका आनन्द रूपभीहै, इसलिए इनके साथ आनन्दरूपको लगादेनाही उचितहै ।

छान्दोग्य उप० अध्याय ७ खंड १३ श्रुति— "यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्"—भूमा नाम ब्रह्मका है वही सुख स्वरूपहै, अल्प नाम भेदका है इसमें सुख नहींहै । यह श्रुतिका अर्थहै । उक्त श्रुतिमें, व्यापककोही सुख या आनन्दरूप मानागयाहै । तब फिर सत्य ज्ञानके साथ आनन्दको लगादेनेसे अब यह सिद्ध हुआ कि सत्यं ज्ञानम् आनन्दं या सत् चित् आनन्दं या अस्ति भाति प्रिय रूपही स्वगत आदि तीनों भेदोंकी सीमासे रहितहोनेसे ब्रह्महै या व्यापकहै ।

पञ्चदशीके पंचकोश विवेक प्रकरणमें श्लोक ३५—

न व्यापित्वाद्देशतो ऽन्तो नित्यत्वान्नापि कालतः ।
न वस्तुतोपि सार्वात्म्यादानन्त्यं ब्रह्मणि त्रिधा ॥

इस श्लोकके अनुसार, या यूं कहो कि सच्चिदानन्दही व्यापक-होनेसे देशकृत भेद या परिच्छेदसे रहितहै, नित्यहोनेसे कालकी सीमासे रहितहै, और सर्वात्मा या एकहोनेसे अन्य वस्तुद्वारा होनेवाले अन्त या भेदसे रहितहै, ऐसी अनन्तता ब्रह्ममें तीनप्रकारकीहै ।

अब यह जिज्ञासा हुई कि सत्यज्ञानानन्दका ऐसा अनन्त ब्रह्मरूप किस समयमेंहै। इस प्रश्नका उत्तर आगेकी श्रुति दे-रहीहै—

छांदोग्य० अ० ६ खंड २ में श्रुति—"**सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्**"—हे प्रिय, यह कारण कार्यात्मक संसार, अपनी उत्पत्तिसे पूर्व एकही अद्वितीय सत् था। इस श्रुतिमें सत् नाम सच्चिदानन्दकाही है। क्योंकि पहलेकहीगई रीतिसे उसका पूर्णरूप, सत्यज्ञानानन्दही निश्चित हुआहै। "सदेव" इस श्रुतिमें, एक एव और अद्वितीय ये तीनोंही पद, स्वगत आदि तीनों भेदोंके निषेधार्थ या हटानेकेलिए दिएगएहैं। इससे सिद्ध हुआ कि यह जगत्, अपनी उत्पत्तिसे पहले स्वगत आदि तीनों भेदों या अन्तोंसे रहित जो सच्चिदानन्द, उससे पृथक् या भिन्न नहीं था, अतः वह सत्यज्ञानानन्द, अनन्त अखण्ड परब्रह्म या पूर्णब्रह्म था।

ऐतरेय उप० खंड १ में श्रुति—"**आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत**"—यह कारण का-र्यात्मक प्रपंच, अपनी उत्पत्तिसे पहले एकही आत्मा या व्यापक था, अन्य कुछभी न था। इस श्रुतिमेंभी आत्मा नाम सच्चिदानन्दकाहीहै। एक और एव पद, स्वगत आदि तीनों भेदोंकी व्यावृत्ति या दूरकरनेकेलियेहैं। तात्पर्य यह है कि यह

जगत्, अपनी उत्पत्तिसे प्रथम, स्वगत आदि तीनसीमाओंसे रहित सच्चिदानन्दसे भिन्न नहीं था । इसप्रकार सत्यज्ञानानन्दही, सृष्टिसे पहले स्वगत आदि तीनों अन्तोंसे रहितहोनेसे परब्रह्म या पूर्णब्रह्म था । सच्चिदानन्दकी ऐसी अवस्थाकोही अतिशुद्ध मायातीत या मायारहित कहागयाहै । श्री शङ्कराचार्यजी, तथा उनके अनुगामी सभी विद्वानोंने उपरोक्त "सदेव"—इस श्रुतिका और "आत्मा वा"—इस श्रुतिका यही अर्थ कियाहै कि यह कारण कार्यात्मक जगत्, सृष्टिकालसे पहले सत् या आत्मरूप था, आत्मासे भिन्न न था । इसलिए आत्मा या सच्चिदानन्द-रूपही, स्वगत आदि तीनों भेदोंसे रहितहोनेसे अनन्त या अखंड-ब्रह्म था ।

श्रीविद्यारण्यजी कृत पंचदशीके पंचभूतविवेकप्रकरणमें "सदेव" —इस श्रुतिका श्लोक २१ "तथा सद्वस्तुनः" —इससे लेकर श्लोक २५ विजातीयं० यहां तक ऊपरमें कहागयाही अर्थ किया-है । इनके आगेके श्लोकोंमेंभी इसी अर्थको बड़ी युक्ति पूर्वक सिद्ध कियाहै कि उस समय मायाशक्ति ब्रह्मसे पृथक् नहींहै, इसीसे वह स्वगत आदि द्वैतसे रहितहै । इसलिये अनन्त या अखण्ड सच्चिदानन्दरूपही, सत्त्व आदि तीनगुणोंसे रहित-होनेसे निर्गुणब्रह्महै, आकाररहितहोनेसे निराकार, विकार-हीनहै इससे निर्विकार, कल्पनाशून्यहोनेसे निर्विकल्प, माया आदि उपाधिसे रहितहोनेसे निरुपाधिकब्रह्म इत्यादि नाम वालाहै ।

इसप्रकार सत्यज्ञानानन्द या सच्चिदानन्दके अनन्त रूपकोही मंत्र और मंत्रब्राह्मणात्मक कठ और प्रश्न आदि उपनिषदोंमें परब्रह्म या निरपेक्ष निर्गुणब्रह्म या पूर्णब्रह्म अर्थात् सबसे बड़ा निर्गुण-रूप मानागयाहै।

निरपेक्ष ब्रह्म या बड़ी वस्तु वही होतीहै, जो सबसे बड़ीहै। सापेक्ष ब्रह्म या बड़ी वस्तु वही होतीहै, जो किसीकी अपेक्षा (बजाय) बड़ीहो और किसीकी अपेक्षा छोटीहै। जैसाकि पृथ्वी अपने घट पट आदि रूप कार्यकी अपेक्षा ब्रह्महै या बड़ीहै, और अपने कारण रूपी जलकी अपेक्षासे अल्पहै। इसप्रकार पृथ्वी, जल तक अन्त या सीमावाली होगई। यह अब सापेक्ष ब्रह्महोगई। अनन्त या निरपेक्ष ब्रह्म या बड़ी नहीं रही। इसी-प्रकार जलभी पृथ्वीसे तो ब्रह्महै, कार्यकी अपेक्षा कारण बडाहीहै, परन्तु तेजसे अन्तवालाहै या अल्पहै। इससे जलभी निरपेक्ष या अनन्त ब्रह्म नहींहै। ऐसेही तेजभी जलसे तो ब्रह्महै, परन्तु वायुसे अन्तवालाहै, इसीसे वह निरपेक्ष ब्रह्म नहींहै। यूं ही वायुभी तेजसे ब्रह्महै, परन्तु यहभी आकाशकी अपेक्षा अल्पहै, ऐसेही आकाशभी ज्ञानेन्द्रियोंकी अपेक्षा सापेक्ष ब्रह्महै। क्योंकि श्रोत्र आदि पांचों ज्ञानेन्द्रियां, आकाश आदि पांच-भूतोंकी अपेक्षा सूक्ष्म और इनकी प्रकाशकहैं या इनको जानती-हैं। ऐसेही ज्ञानेन्द्रियांभी सापेक्ष ब्रह्महैं। क्योंकि इनकी अपेक्षा सूक्ष्म मनहै और इनका प्रकाशकहोनेसे ब्रह्महै। आगे मनभी

सापेक्ष ब्रह्महै। क्योंकि इसके गुण दोष या अच्छेपन और बुरेपनको जाननेवाली बुद्धि इससेभी ब्रह्महै। बुद्धिभी सापेक्ष ब्रह्महै। क्योंकि बुद्धिसे परे महत्तत्व या हिरण्यगर्भरूपा, सर्वज्ञ आदि गुणोंवाली बुद्धि ब्रह्महै। बुद्धि और महत्तत्वसे शुद्धसत्व-गुणप्रधानमाया और मलिनसत्वगुणप्रधानअविद्या ब्रह्महै। यहां तक संपूर्ण इन्द्रियों एवं समग्र मनों तथा अखिल बुद्धियों, और समस्त कारणशरीरोंका ग्रहणकरनाचाहिए। क्योंकि ये इन्द्रियां आदि सभी वस्तुएं असंख्यहैं। कारणशरीरभी अपने संपूर्ण कार्यकी अपेक्षा तो कारणहोनेसे ब्रह्महै, परन्तु वह अनन्त सच्चिदानन्द रूपकी अपेक्षा स्वगत आदि भेदके हेतु अन्तवाला-होजानेसे आनन्दमयभी सापेक्ष ब्रह्महीहै। इसलिए सच्चिदा-नन्दका अनन्त रूपही, निरपेक्ष निर्गुणब्रह्म या पूर्णब्रह्महै।

यही बात गीता अध्याय ३ श्लोक ४२ में कहीगईहै।

इन्द्रियाणि पराण्याहु—रिंद्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

(आकाश आदि स्थूलभूतोंसे) परे इन्द्रियां कहीजातीहैं, इन्द्रियों-से परे मन एवं मनसे परे बुद्धि और बुद्धिसे परे आत्माहै।

कठ उप० छठी बल्ली मंत्र ८—९।

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्वमुत्तमम्।
सत्वादधि महानात्मा महतो ऽव्यक्तमुत्तमम्॥८॥

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापको ऽलिंग एव च ।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥९॥

आकाश आदि स्थूलभूतोंसे परे, इन्द्रियांहैं) इन्द्रियोंसे परे मन, मनसे उत्तम बुद्धिहै तथा बुद्धिसे श्रेष्ठ महत्तत्वहै, महत्तत्वसे उत्तम अव्यक्तहै ॥८॥ अव्यक्तसे परे पुरुषहै, वह व्यापकहै और चिन्हसेरहितहै, जिसे जानकर जीव अमर होजाताहै ॥९॥ इससे सत्यज्ञानानन्दका अनन्तरूप ही निरपेक्षनिर्गुणब्रह्महै ।

परन्तु उक्त रीतिसे सच्चिदानन्दका ऐसा अनन्त रूप, महाप्रलय-की मध्य अवस्थामेंही सिद्धहोताहै, उसकी आदि और अन्तिम अवस्थामें नहीं । क्योंकि महाप्रलयकी आदि अवस्थामें ब्रह्मकी कारणअवस्था समाप्त होरहीहै और उसकी अन्तिम अवस्थामें ब्रह्मकी कारण अवस्थाका आरम्भ होजाताहै । अतः उसकी मध्य अवस्थाही अतिशान्त निर्विकल्प अवस्थाहै । उसीमें सच्चिदानन्दका अनन्तरूप सिद्धहोताहै । अतः वह निरपेक्ष निर्गुणब्रह्महै ।

ऐसेतो सृष्टिकालमें होनेवाली सुषुप्तिकी मध्य तुरीय अवस्थामें सच्चिदानन्दका इच्छासे रहितहानेसे शुद्ध अकर्त्ता और अभोक्ता रूपहै, तथा मांडूक्य उप० की "नान्तःप्रज्ञं"—इत्यादि श्रुतिसे इसका आत्मा यह नामहै, एवं "अयमात्मा ब्रह्म"—इस श्रुतिसे यह ब्रह्महै ।

ब्रह्मसूत्र अध्याय ३ पाद २ सूत्र ७ **"तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च"** । शांकर भाष्य—सत्प्राज्ञयोश्च प्रसिद्धमेव ब्रह्मत्वम् । एवमेतासु श्रुतिषु त्रीण्येव सुषुप्ति स्थानानि संकीर्तितानि नाड्यः पुरीतद्ब्रह्म चेति । तत्रापि द्वार मात्रं, नाड्यः पुरीतच्च, ब्रह्मैवत्वेकं सुषुप्तिस्थानम् अपि च नाड्यः पुरीतद्वा जीवस्योपाध्याधार एव भवति तत्रास्य करणानि वर्तन्त इति । न ह्युपाधि संबन्धमन्तरेण स्वत एव जीवस्याधारः कश्चित्संभवति, ब्रह्माव्यतिरेकेण स्वमहिम—प्रतिष्ठितत्वात् । ब्रह्माधारत्वमप्यस्य सुषुप्तेः नैवाधाराधेय भेदाभिप्रायेणोच्यते, कथंतर्हि तादात्म्याभिप्रायेण । यत आह—"सता सोम्य तदा संपन्नो भवति स्वमपीतोभवति" (छा० ६।८।१) इति । स्वशब्देनात्माभिलप्यते, स्वरूपमापन्नः सुप्तो भवतीत्यर्थः । अर्थ-सत् नामी परमात्माको और प्राज्ञको ब्रह्मता प्रसिद्धहीहै । इसप्रकार इन श्रुतियोंमें तीनोंही सुषुप्तिस्थान कहेगएहैं नाड़ियां पुरीतत् और ब्रह्म । उनमेंभी नाड़ियां और पुरीतत् द्वार मात्रहै, किंतु ब्रह्महीएक सुषुप्तिस्थानहै । दूसरी बात यहहै कि नाड़ियां और पुरीतत् जीवकी उपाधिकाही आधारहै, क्योंकि वहां जावके मन आदि करण विद्यमानहैं । उपाधिके संबन्ध बिना स्वाभाविकही जीवका कोई आश्रय संभव नहींहै, ब्रह्मसे अभिन्न अपनी महिमामें स्थित होनेसे, अर्थात् ब्रह्मरूपहोनेसे । सुषुप्तिमें जीवका ब्रह्मको आधार-

पनाभी आश्रय और आश्रय करनेवाला ऐसे भेदके अभिप्रायसे नहींहै (प्रश्न) तो कैसेहै (उत्तर) अभिन्न रूपके अभिप्रायसेहै । क्योंकि ऐसा कहाहै कि हे सोम्य, सुषुप्ति अवस्थामें सत्‌रूपसे स्थित होताहै-अपनेस्वरूपको प्राप्तहोताहै । स्वशब्दसे अपना आप कहाहै, तात्पर्य यह है कि स्वस्वरूपको प्राप्त हुआ सुप्त कहलाताहै । यह भाष्यका अर्थहै ।

पंचदशीके योगानन्द प्रकरणमें श्लोक—

आत्माभिमुख धीवृत्तौ स्वानन्दः प्रतिबिम्वति ।
अनुभूयैनमत्रापि त्रिपुट्या श्रान्तिमाप्नुयात् ॥४४॥

(सुषुप्तिकी आदि अवस्थामें) आत्माके सम्मुखहुई बुद्धि-वृत्तिमें आत्माका प्रतिबिम्बपड़ताहै, इस अवस्थामें जीव विषयानन्दको अनुभवकरके अनुभविता अनुभव और अनुभाव्यरूप त्रिपुटीसे श्रमको प्राप्तहोजाताहैं । (यही प्राज्ञनामी जीवकी अवस्थाहै) ॥४४॥

तच्छ्रमस्यापनुत्त्यर्थं जीवो धावेत्परात्मनि ।
तेनैक्यं प्राप्य तत्रत्यो ब्रह्मानन्दः स्वयं भवेत् ॥४५॥

प्राज्ञनामी जीव, उस त्रिपुटीरूपी श्रमकी निवृत्तिकेलिए परमात्माकी ओर दौड़ताहै उससे एकताको प्राप्तकरके स्वयं ब्रह्मानन्द होजाताहै । यह श्लोक छान्दोग्य० की "सता सोम्य तदा संपन्नो भवति" इस श्रुतिके आधारपर बनाहै) ॥४५॥

पितापि सुप्तावपितेत्यादौ जीवत्ववारणात् ।
सुप्तौ ब्रह्मैव नो जीवः संसारित्वासमीक्षणात् ॥५६॥

(बृ० अ० ४ ब्राह्मण ३ श्रुति २२ "अत्र पिता अपिता भवति". सुषुप्तिअवस्थामें पिताभी पिता नहीं रहता—इस श्रुति—के अनुसार) आत्मा, प्राज्ञ नाम जीवपनेके निवृत्तहोजानेपर सुषुप्तिमें ब्रह्महीहै (किंतु) जीव नहींहै, क्योंकि यहां आत्मामें संसारीपना या जीवपना नहीं देखाजाता ॥५६॥

त्रयाभावे तु निर्द्वैतः पूर्ण एवाभिधीयते ।
समाधि सुप्ति मूर्छासु पूर्णः सृष्टेः पुरा तथा ॥१६॥

जिसप्रकार आत्मा,समाधि सुषुप्ति और मूर्छाकी अवस्थामें त्रिपुटी-के अभावसे द्वैतरहित और पूर्णहै, ऐसेही यह सृष्टिकी उत्पत्तिसे पहिले द्वैतसेरहित पूर्णब्रह्मथा ॥१६॥

इसलिए सुषुप्तिकी मध्यअवस्थाही आत्माकी तुरीयअवस्थारूप ब्रह्म अवस्थाहै । इसी ब्रह्मात्माके, प्राज्ञ तैजस और विश्व अन्य तीनों पादरूप विवर्तहैं या विशेषरूपहैं ।

जिससेकि सुषुप्तिकी आदि अवस्थामें आत्माकी कारण अवस्था समाप्त होरहीहै और इसकी अन्तिम अवस्थामें आत्माकी कारण-अवस्थाका आरम्भ होजाताहै, अतः सुषुप्तिकी मध्य अवस्थाही आत्माकी शुद्ध अकर्ता अभोक्तारूप ब्रह्म अवस्थाहै । तोभी यह, समान जातिवाले आत्माओंसे सजातीय भेदवालाहै । स्वप्नों तथा

जागृतोंमें स्थित आत्माओंसे विजातीय भेदवालाहै, अतः यह अनन्त ब्रह्म नहींहै ।

ऐसेतो सत्यज्ञानानन्दके चारपादोंमेंसे सृष्टि कालमें एकपादका सबसे बड़ा अंश सच्चिदानन्द, शुद्धसत्वगुणप्रधानमाया उपाधि या इच्छावाला आदित्यस्थानीहोनेसे अन्तर्यामी कहाजाताहै और वह अपने सर्वज्ञ आदि गुणोंकेद्वारा अन्य सभी जीवोंकी अपेक्षा ब्रह्म या बड़ाहै, तोभी वह अपने सूत्रात्मा और वैश्वानरकेद्वारा स्वगतभेदवालाहै तथा अन्य सभी जीवोंसे विजातीय भेदवालाहै, अतः वह सत्यज्ञानानन्दका अनन्तरूप न होनेसे वह निरपेक्ष निर्गुणब्रह्म नहींहै ।

ऐसेतो सच्चिदानन्दके चारपादोंमेंसे सृष्टिकालमें एकपाद सच्चिदानन्द, सत्त्व आदि तीनों गुणोंकी उपाधिवाला अर्थात् माया और अविद्या आदि सभी उपाधियोंमें व्यापकहोनेसे सगुणब्रह्म कहलाताहै, और वह प्राज्ञ तथा अन्तर्यामीकी अपेक्षा ब्रह्महै । तोभी वह अपने प्राज्ञ आदि अध्यात्मपादोंद्वारा और अन्तर्यामी आदि अधिदैवपादोंद्वारा स्वगत भेदवालाहै तथा माया और अविद्याकेद्वारा विजातीय भेदहोजानेकेकारण वह सत्याज्ञानानन्दका अनन्त रूप न होनेसे निरपेक्ष निर्गुणब्रह्म नहींहै ।

सभूमिं सर्वतः स्पृत्वा ऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ।
पादो ऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

यह मंत्र यजुर्वेदके और ऋग्वेदके पुरुषसूक्तकाहै । इसका यह अर्थ-है कि वह ब्रह्मांडमें व्याप्तहोकरभी दश अंगुल ऊपर स्थितहै, इसका समस्तविश्व एकपादहै और इसका तीनपाद अविनाशीहै । ऐसेतो उक्त मंत्रके अनुसार सृष्टिकालमें होनेवाले सगुण सच्चिदानन्दसे, त्रिपाद विशुद्धसच्चिदानन्द, माया या इच्छारहितहोनेसे-निर्गुण निराकार तथा ज्ञेय ब्रह्महै, तोभी वह सगुणसच्चिदानन्द-केद्वारा विजातीय भेदहोजानेसे वह सच्चिदानन्दका अनन्त रूप नहींहै, अतः वह निरपेक्षनिर्गुणब्रह्म नहींहै ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि मंत्र या मंत्रब्राह्मणात्मक उपनिषदोंके अनुसार महाप्रलयकी मध्य अवस्थामेंही सत्यज्ञानानन्दका अनन्तरूपही चतुष्पादविशुद्ध निरपेक्ष निर्गुणब्रह्महै ।

स्मरणरहेकि तुरीय आत्माका, सजातीय और विजातीय भेदवाला होना तथा त्रिपादज्ञेय ब्रह्मका विजातीयभेद युक्त होना स्वदृष्टिसे नहींहै और न ज्ञानवान् की दृष्टिसेहै। किंतु जाग्रतकालीन जीवकी साधारण दृष्टिको लेकरहै। अस्तु! उक्तरीतिसे सत्यज्ञानानन्दका रूप, पांच प्रकारसे ब्रह्महै। १—"द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे" ब्रह्मके दो रूपहैं। इन बृहदारण्य की श्रुतियोंसे, आदित्यस्थानी सच्चिदानन्द, सापेक्षसगुण ब्रह्महै । क्योंकि वह शुद्धसत्वगुणप्रधान मायारूपी इच्छाके सहितहोनेसे सगुणहै और अन्यजीवोंकी अपेक्षा उपास्य तथा प्राप्यहोनेसे बड़ाहै। अतः वह सापेक्ष सगुणब्रह्महै ।

२—"सहस्रशीर्षा पुरुषः" इस मंत्रसे असंख्य शिरों आदि

अंगोंवाला "पादोऽस्य विश्वाभूतानि" इसका समस्त विश्व एकपादहै, इस अर्धमंत्रसे, एकपाद सच्चिदानन्द, निरपेक्षसगुण ब्रह्महै। क्योंकि यह सत्व आदि तीनगुणोंके युक्त, ईश्वर और जीवोंका समुदायरूपहै, इसके आगे अन्य कोई सगुणब्रह्म नहींहै, इसलिये यह, एकपाद सच्चिदानन्द, निरपेक्ष सगुणब्रह्महै।

३—सुषुप्तिकी मध्य तुरीय अवस्थामें स्थित शुद्धसच्चिदानन्दात्मा सापेक्ष निर्गुणब्रह्महै। क्योंकि यह, विश्व तैजस और प्राज्ञनामी जीवकी अपेक्षा, अविद्या रहितहोनेसे निर्गुणब्रह्महै। इसलिये यह, सापेक्ष निर्गुणब्रह्महै। ४—"त्रिपादस्यामृतं दिवि" इसका तीनपाद अविनाशीहै। इस अर्धमंत्रसे त्रिपाद विशुद्ध ज्ञेयसच्चिदानन्द, सापेक्षनिर्गुणब्रह्महै। क्योंकि यह सुषुप्तिमें स्थित आत्माकी अपेक्षा, सदाही माया अविद्या रहितहोनेसे निर्गुणब्रह्महै, इसलिये यह सापेक्ष निर्गुणब्रह्महै। ५—"सदेव" इस छांदोग्यकी श्रुतिसे तथा "आत्मा वा" इस ऐतरेय श्रुतिसे महाप्रलयकी मध्य अवस्थामें स्थित सत्यज्ञानानन्द, चतुष्पाद विशुद्ध निरपेक्ष निर्गुणब्रह्महै। क्योंकि सच्चिदानन्दकी उससे भिन्न अन्य कोई शुद्धब्रह्म अवस्था नहींहै। अतः वह निरपेक्ष निर्गुणब्रह्महै। इसप्रकार सत्यज्ञानानन्द, इन पांच प्रकार के रूपोंमेंसे चारप्रकारके रूपोंसे सापेक्षब्रह्महै और पांचवें अनन्त रूपसे चतुष्पादविशुद्ध निरपेक्षनिर्गुणब्रह्महै।

अर्थात् महाप्रलयमें, सत्यज्ञानानन्दका सबसे बड़ा निर्गुणरूपहै।

पूर्वोक्तरीतिसे वैदिक ब्रह्म विचार में ब्रह्मका स्वरूप तथा उसका निर्गुणरूप नामवाला पहिला प्रकरण समाप्त हुआ।

२—सगुण ब्रह्म

चतुष्पादविशुद्धसच्चिदानन्दका एकपादविशुद्ध सच्चिदानन्दही सत्व आदि तीनों गुणोंके सहित-होनेसे सगुणब्रह्महै ।

यजुर्वेदके पुरुष सूक्तमें मंत्र—

ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः । ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥

(अविनाशी पुरुष(तीनपादसे ऊर्ध्व वा उत्कृष्ट स्वस्वरूपमें विद्यमानरहताहै, उसका एकपाद यहां अर्थात सृष्टिमें विश्वरूप हुआ है, वह उस एकपादसे नाना प्रकारके भोग्य और भोक्ता रूपसे स्वयं ही विस्तारको प्राप्तहुआहै । इस मंत्रके अनुसार, सत्व आदि तीनगुणोंके सहित एकपाद सत्यज्ञानानन्द या अस्ति भाति प्रिय रूपही सगुणब्रह्महै । ब्रह्मके चारोंपाद पैर या भाग वास्तविक नहीं हैं। क्योंकि ब्रह्म निरवयव और अप्रमेयहै । इसलिये पादोंकी कल्पनाहीहै । सच्चिदानन्दब्रह्मके चारपादोंको घोड़े आदि पशुओंके चारपादोंके समान नहीं समझना चाहिये । क्योंकि घोड़े आदिका पैर कटकर अलग होजानेपरभी यह घोड़े-का पाद या पैरहै ऐसा कहाजाताहै । परन्तु सच्चिदानन्दब्रह्मके

चारोंपाद, ब्रह्मसे भिन्न अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं रखते। इसलिये ब्रह्मके चारपादोंको रुपये की चारचवन्नियोंके समान जानना चाहिये। जिसप्रकार चारचवन्नियां रुपयेसे अलग अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं रखतीं, किंतु वे रुपया हीहैं। इसीप्रकार ब्रह्मके चार-पादोंको जानना होगा। जैसे चारचवन्नियोंमेंसे एक चवन्नी, दो आना एक आना अधन्नी पैसा और पाईके रूपको धारणकरती-हैं ऐसेही ब्रह्मके चारपादोंमेंसे एकपाद सृष्टिको प्राप्त हुआहै। उसमेंभी जहां जहां इच्छाहै वहां वहां ईश्वरता और जीवताहै। शेष सामान्य चैतन्य शुद्ध निर्गुणब्रह्महै।

चतुष्पाद विशुद्ध ब्रह्मसच्चिदानन्दके एकपाद विशुद्ध निर्गुणब्रह्मसच्चिदानन्दसे सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन—

तैत्तरीय ब्रह्मानन्दवल्लीके छठे अनुवाकमेंश्रुति–"सोऽकामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति" उस चतुष्पाद विशुद्ध निर्गुणब्रह्म सच्चिदा-नन्दने एकपाद विशुद्ध निर्गुणब्रह्म सच्चिदानन्दके द्वारा कामना या इच्छाकी। मैं प्रकट होऊँ और नामरूपके द्वारा बहुत होजाऊँ।

ऐसेही उपनिषदोंमें जहां जहांपर भी सत्से या आत्मा आदि नामसे सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णनहै, वहां वहांपर चतुष्पाद विशुद्ध-ब्रह्म सच्चिदानन्दके एकपाद विशुद्धब्रह्म सच्चिदानन्दकेद्वाराही

सृष्टिकी उत्पत्तिका ग्रहणाकरनाचाहिए। सृष्टिकी उत्पत्ति एक-पाद विशुद्धब्रह्मसेही बनसकतीहै, सगुणब्रह्मसे नहीं। क्योंकि सगुणब्रह्मता तो उसमें इच्छाहोजानेसे उस एकपाद विशुद्धब्रह्म-कीही विशेष अवस्थाहै। इसलिये विशुद्धब्रह्म एकपाद सच्चिदा-नन्दसेही सृष्टिकी उत्पत्तिको ग्रहणाकरना उचितहै।

ऐतरेय उप० प्रथम खण्डमें श्रुति—"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्सृजा इति" —यह सब आगे आत्माही था और कुछ नहीं था, उस एकपाद सत्यज्ञानानन्दरूप आत्माने इच्छाकी कि मैं सत्य आदि लोकोंको रचूं।

छान्दोग्य० अध्याय ६ खण्ड २ में श्रुति—" सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्। तदैक्षत वहुस्यां प्रजायेयेति"—हे सोम्य, यह सब आगे एकही अद्वितीय सत् था। उस सत्ने इच्छाकी मैं प्रकटहोऊं और नाम रूपकेद्वारा बहुत होजाऊं।

यजुर्वेदके पुरुष सूक्तमें मंत्र—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजा-
मानो वहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति
धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

प्रजापति, सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थितहुआ मायाके गर्भरूप कारण कार्य या पिंड ब्रह्मांडमें प्रवेशकरताहै, वास्तवमें अजन्मा होकरभी कारण कार्यके रूपमें उत्पन्नहोताहै, ब्रह्मवेत्ता उसके परमार्थ सत्य स्वरूपको अनुभवकरतेहैं, जिसमें समस्त भुवन स्थितहैं। इस मंत्रसेभी ब्रह्मकोहो जगत्केरूपमें उत्पन्न होनेवाला कहागयाहै।

ब्रह्म यह नाम नपुंसक रूपहै, परन्तु उसका सच्चिदानन्दरूप सर्वात्माहोनेसे स्त्रीके रूपमें और पुरुषलिंगमेंभी है। इसीसे सृष्टि-की उत्पत्ति "तदैक्षत–यहांपर तत् नामसे और सोऽकामयत"–यहांपर (स) इस नामसे दिखाईगईहै।

तदैक्षत इसमें तत् यह पद, सोऽकामयत इसमें स यह पद दोनोंही, चतुष्पाद विशुद्ध निर्गुणब्रह्मसच्चिदानन्दके स्मारकहैं। ऐक्षत और अकामयत इनसे, सबप्रकारकी इच्छाओं या काम-नाओंका ग्रहणकरनाचाहिये।

मुंडक उप० मुंडक १खंड १मंत्र ७––

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्या-मोषधयः संभवन्ति। यथा सतः पुरुषात्केश लोमा-नि तथाक्षरात् संभवतीह विश्वम्॥ जिसप्रकार मकड़ी जालेको बनातीहै और निगल जातीहै तथा जैसे पृथ्वीमें अनेक प्रकारकी ओषधियां उत्पन्नहोतीहैं और जैसे जीवित मनुष्यसे

केश और रोम पैदाहोंतेहैं इसीप्रकार अविनाशीब्रह्म सच्चिदानन्दसे इस सृष्टिमें सब कुछ उत्पन्न होताहै। यह मंत्रका अर्थहै। तैतरीय उप० के छठे अनुवाकमें श्रुति—

सोऽकामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा। इदं सर्वसमृजत। यदिदं किंच। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य। सच्च त्यच्चाभवत्। निरुक्तंचानिरुक्तं च। निलयनं चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च। सत्यं चानृतं च। सत्यमभवत्। यदिदं किंच। तत्सत्यमित्याचक्षते।

उस सत्यज्ञानानन्दने विचारकिया कि मैं जन्म ग्रहण करूं और बहुत होजाऊं। इसके अनन्तर उसने तप किया अर्थात् अपने संकल्पका विस्तारकिया। उसने इसप्रकार संकल्पका विस्तारकरके जो कुछभी यह देखनेमें और समझनेमें आरहाहै इस समस्त जगत्की रचनाकी। इस जगत्की रचना करनेके अनन्तर वह स्वयं उसीमें साथ साथ प्रविष्टहोगया। उसमें साथ-साथ प्रविष्टहोनेके पीछे वह स्वयंही मूर्त और अमूर्त बतानेमें आनेवाले और बतानेमें न आनेवाले तथा आश्रय देनेवाले और आश्रय न देनेवाले, चेतना युक्त और जड़ पदार्थ तथा

सत्य और झूठ इन सबके रूपमें वह स्वयंही होगया । जो कुछ भी यह दिखाई देरहाहै और अनुभवमें आरहाहै वह सत्य ब्रह्मही है । इसप्रकार ज्ञानीजन कहतेहैं। यह इन श्रुतियोंका अर्थहै ।

ब्रह्मको जगत्की अभिन्ननिमित्तोपादानकारणता

पूर्वोक्त श्रुतियोंमें सत्यज्ञानानन्दब्रह्मको जगत्का अभिन्न निमित्तोपादानकारण कहागयाहै । जिसमेंसे कार्य बनाया जाताहै वह उपादानकारण होताहै, और जो कार्यको बनानेवाला होताहै वह निमित्तकारण कहलाताहै—जैसाकि मृतिका नाम मिट्टी उपादानकारणहै । कुंभार निमित्तकारणहै । बननेवाला घड़ा कार्य कहलाताहै । यहां उपादानकारण मिट्टी भिन्नहै और कुंभार अलगहै । इससे घटरूपी कार्य, भिन्न निमित्त उपादान कारणवाला हुआ । परन्तु जगत्की रचनामें कुंभारका दृष्टान्त लागू नहींहै । क्योंकि ब्रह्म, जगत् रूपी कार्यमें व्यापकहै । अतः वह आपही जगत् बनताहै और अपने आपही बनानेवालाहै । तात्पर्य यह कि बननेवाला और बनानेयाला आपहीहोनेसे वह जगत्का अभिन्न निमितोपादानकारणहै । पंचदशीके चित्रदीप प्रकरणमेंभी शुद्धब्रह्मसेही सृष्टिकी उत्पत्ति वस्त्रके दृष्टान्तसे कहीगईहै। श्लोक १ जैसे चित्रपटमें चार अवस्थाएं देखीगईहैं ऐसेही परमात्मामेंभी चार अवस्थाएंहैं । श्लोक २ जैसे वस्त्र, धौत, घट्टित, लांछित और रंजित होताहै, ऐसेही परमात्मा, चित्

अन्तर्यामी सूत्रात्मा और विराट कहाजाताहै । श्लोक ३ किसी अन्य द्रव्यके संबन्ध बिना वस्त्र, धौत होताहै, मांडदेनेसे घट्टित मसिरूप चिन्होंसे युक्त लांछित और चित्र बनजानेसे रंजित होजाताहै। श्लोक ४ परमात्मा, माया और उसके कार्यसे रहित चित् कहाजाताहै, मायाके संबन्धसे अन्तर्यामी, सूक्ष्मसृष्टिसे सूत्रात्मा और स्थूलसृष्टिद्वारा विराट कहाजाताहै। इसप्रकार शुद्धब्रह्मकीही चारों अवस्थाएं बतलाईगईहैं।

"सोऽकामयत।" "बहुस्यां"—उस आनन्दब्रह्मने कामनाकी बहुत होजाऊं। इसी कामना या इच्छाका नाम, रजोगुण और तमोगुणकेद्वारा मलिन न होनेकेकारण शुद्धसत्वगुण प्रधानहोने से मायाहै । तथा रजोगुण और तमकेद्वारा मलिनहोजानेसे मलिनसत्त्वगुणप्रधान अविद्याहै । एवं जगत्का बीजहोनेकेहेतु कारणशरीरहै।

इच्छाकी उत्पत्तिका समय और उसका रूप-

जिससे कि महाप्रलयकी आदि अवस्थामें ब्रह्मकी कारणता विलीन होनेलगतीहै और मध्य अवस्था शुद्धहै, अतः यह इच्छा महा-प्रलयकी अन्तिम अवस्थामें हुईहै। यह माया और अविद्या रूपी सामान्य इच्छा, महाप्रलयकी मध्य अवस्थामें अनन्तब्रह्म सच्चिदानन्दसे भिन्न नहींहै, अतः इसे ब्रह्मसे भिन्न नहीं कहाजा-सकता। यह इच्छा, महाप्रलयकी अन्तिम अवस्थामें ब्रह्ममें प्रकट

हुईहै इसलिए इसको ब्रह्मसे अभिन्नभी नहीं कहाजासकता। यह प्रतीत होरहीहै इससे यह असत् नहींहै, महाप्रलय आदिकी मध्य अवस्थामें तथा विदेहकैवल्यकी अवस्थामें यह नही रहती-है, इससे सत्भी नहींहै, इसीसे यह अनिर्वचनीय या अकथनीय-हीहै। यह इच्छा, सत्व या प्रकाशरूप, रजस् या चंचलरूप, तमस् या आवरणरूप इन तीनों गुणोंवालीहोनेसे त्रिगुणात्मिका कहीजातीहै। तथा परिणामी या परिवर्तन स्वभाववालीहै, महाप्रलयकी मध्य आवस्थामें यह अव्यक्तरूपाहीहै, इसका अन्य कुछभी नाम नहींहै। सांख्यशास्त्रने इसका, उस समयकी अवस्थामें प्रधान नाम रखाहै। परन्तु वास्तवमें देखाजाए तो वहांपर केवल सच्चिदानन्दका अनन्तरूप ब्रह्मही प्रधान होगया-है, वहां यह किसी नाम या तर्कका विषय नहींहै।

यह यदि आदिके सहितहै तो अन्तवालीहै यह यदि अनादि है तो फिर यह अनन्तहीहै। किन्तु ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टिमें यह कुछभी वस्तु नहींहै। महाप्रलयकी अन्तिम अवस्थामें यह विष-मताको प्राप्त होगईहै। इस अवस्थामें इसका प्रधान प्रकृति माया अविद्या कारणशरीर या आनन्दमय आदि नाम होगयाहै।

इच्छाका आश्रय और विषय—

यह तीनगुणोंकी अवस्थारूपी इच्छा, ब्रह्मकोही अपना आश्रय-बनाकर रहतीहै—इसीसे यह ब्रह्माश्रया कहीजातीहै। और ब्रह्म-

कोही आच्छादन करतीहै–इसीसे यह स्वविषया कहलातीहै।

भानुप्रभा संजनिताभ्रपंक्ति—
भानुं तिरोधाय विजृम्भते यथा ।
आत्मोदिताहंकृतिरात्मतत्वं,
तथा तिरोधाय विजृम्भते स्वयम् ॥

जिसप्रकार सूर्यके तेजसे उत्पन्न हुई मेघमाला सूर्यहीको ढंककर स्वयं फैलजातीहै–उसी प्रकार आत्मासे प्रकट हुई अहंवृत्ति, आत्माकोही आच्छादितकरके स्वयं स्थित होजातीहै। विवेक चूड़ामणिके इस १४४ श्लोकानुसार, यह इच्छाही आनन्दमय आदि कोशोंका रूप ग्रहणकरके शुद्धसत्वगुणप्रधानहोनेसे माया और मलिन सत्वगुणप्रधानहोनेपर ब्रह्मको आच्छादक होजातीहै। इसका इच्छाके रूपमें होजानाही सब अनर्थोंका हेतुहै और यह अनिच्छारूपसे दुखका कारण नहींहै। इसीलिये श्रुतियोंने सुषुप्तिकी अवस्थामें जीवकी ब्रह्मरूपता स्वीकारकीहै, इसीका आगे विशेषरूपसे वर्णन किया जारहाहै।

इच्छाकाही विशेष नाम–

इस माया या इच्छाका नाम कोशभीहै। कोश नाम आवरण ढकने या पड़देकाहै। यह आनन्दमयकोश या सामान्य इच्छाही ब्रह्मके सच्चिदानन्दरूपको आच्छादनकरके उसे जगत्के रूपमें बनादेतीहै। इसीसे इसे कोशनामसे कहा–

गयाहै। इसी आनन्दमयकोशके विषयमें ऐतरेय० के खंड २ में ऐसी श्रुतिहै। "स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत। सैषा विद्वतिनाम द्वास्तदेतन्नान्दनं।" सदात्मा इसी आनन्दमय या कारणशरीररूपी वृत्तिका विदीर्ण या विस्तारकरके वह इसीकेद्वारा प्रविष्टहोगया। भावार्थ यह कि वह विज्ञानमय आदि कोशोंमें वहिर्मुख या बाहर जानेकेलिए तैयारहोगया। यह आनन्दमयही आनन्दब्रह्मके प्रवेशके या बाहर जानेकेलिए विद्वति नाम द्वाः—विस्तृत द्वारहै। या बड़ा दर्वाजाहै। यह आनन्दमय, आनन्दप्रधानहोनेसे नान्दन नामवालाहै। प्रकरण प्राप्त तैतरीयको "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्"—इस श्रुतिकाभी यही अर्थहै कि उस सच्चिदानन्दने इस वृत्तिको रचा और इसको रचकर उसीने इसीमें प्रवेशकिया। इसी इच्छावृत्तिरूपा कोश या ढकनेमें आजानेकेकारण या उसपर ऐसा आवरण आजानेसे ब्रह्मके स्थानमें मांडूक्य उपनिषदकी श्रुतिके अनुसार इसका नाम अब प्राज्ञ होगया।

ब्रह्मात्मका प्राज्ञनाम इससे हुआकि इसमें, सभी विशेष ज्ञान घनीभूत या एकरूपहोकर रहतेहैं।

पहिली इच्छा

उपरोक्त "सो अकामयत"—उसने कामनाकी, इस श्रुतिसे माया

अविद्यारहित, शुद्ध सच्चिदानन्दब्रह्ममें पहिलो इच्छा, अस्मि—हुं इसप्रकारकी हुई—जोकि सात्विकी राजसी आदि सामान्य इच्छाओंका सामूहिकरूपहै । जिससेकि वह तीनपादोंसे विशुद्ध या इच्छा रहित निर्गुण ब्रह्म बनारहा और उसका एकपाद प्राज्ञोंका समूह सगुणब्रह्म होगया । निर्गुणब्रह्ममें जहांपर शुद्धसात्विकी अस्मि ऐसी सामान्य इच्छा हुई, वहां वह निरपेक्ष अन्तर्यामी ईश्वर होगया, जोकि प्राज्ञविशेष या पुरुषविशेष ईश्वरभी कहा-जाताहै । ब्रह्ममें, जहां जहांपर शुद्धसात्विकी इच्छाकी अपेक्षा मलिनसात्विकी इच्छाहुई, वहां वहांपर यह प्राज्ञनामी सापेक्ष ईश्वर होगया । कारणकिप्रत्येकप्राज्ञ, अपने २ कारणशरीरका नियन्ताहोनेसे ईश्वरहै । और एक दूसरेकी अपेक्षा छोटा बड़ा होनेसे सापेक्ष ईश्वरहै । जिससेकि कामना या इच्छा वृत्तियां असंख्यहैं—इससे प्राज्ञभी असंख्यहीहैं । क्योंकि ये प्राज्ञ, सूक्ष्म-शरीरकेद्वारा कर्ता भोक्तारूपी जीवका रूप धारणकरतेहैं--इसीसे ये सभी प्राज्ञ, जीव कोटिमें मानेगएहैं किन्तु ईश्वर कोटिमें गौणहैं । यहांसे ब्रह्मको कारण अवस्था आरम्भ हुईहै ।

दूसरी इच्छा

"वहुस्यां प्रजायेयेति" मैं बहुत होजाऊं, अनेक प्रकारसे प्रकट होऊं । इस उत्तरार्ध श्रुतिसे, मैं बहुत होजाऊं इसप्रकारकी दूसरी इच्छा, ब्रह्मके एकपादरूप सभी प्राज्ञोंमें सूक्ष्मशरीरोंकेलिये हुई ।

यहां ब्रह्मकी कारण अवस्था पूर्ण होगई । इसप्रकार निगु ण चतुष्पादब्रह्मके एकपाद अस्ति भाति प्रियने शुद्धसत्वगुणप्रधान-माया उपाधि और मलिनसत्वगुणप्रधान अविद्या उपाधि या आनन्दमयकोश या कारणशरीर या कामनावाले संपूर्णप्राज्ञोंके-रूपद्वारा निश्चय करनेकी कामानाकी और अपनी इच्छाशक्ति-को प्रेरणाकी, तब सात्विकी इच्छाने उसकी आज्ञा स्वीकारकरते-हुए बुद्धि और बुद्धिकेद्वारा निश्चयका रूप धारणकिया । यहां से ब्रह्मरूप प्राज्ञका कर्तारूप अवस्थाका आरम्भ होगया । इस-के अनन्तर सच्चिदानन्दब्रह्मने समग्र प्राज्ञोंकेरूपद्वारा संकल्प करनेकी कामनाकी, तबतो कामनाने बुद्धिकेद्वारा मन और मनकेद्वारा संकल्पका रूप धारणकिया । उक्त ब्रह्मने सुननेकी चाहकी और इच्छाको प्रेरणाकी, तब इच्छाने मन या अहंकार-केद्वारा शब्द और शब्दकेद्वारा श्रोत्र इन्द्रियका रूप धारणकिया फिर ब्रह्मने स्पर्श करनेकी कामनाकी और कामनाको प्रेरितकिया तबतो कामनाने शब्दकेद्वारा स्पर्श और स्पर्शकेद्वारा त्वचा इन्द्रिय-का रूप धारणकिया । उसके पीछे ब्रह्मने देखनेकी चाहकी और चाहको प्रेरणाकी, तब चाहने स्पर्शकेद्वारा रूप और रूपकेद्वारा नेत्र इन्द्रियका रूप ग्रहणकिया । फिर ब्रह्मने स्वाद लेनेकी भावनाकी और भावनाको प्रेरित किया, तब भावनाने रूपके-द्वारा रस और रसकेद्वारा अपनेको रसना इन्द्रियके रूपमें बना-लिया । इसके पीछे ब्रह्मने गन्ध लेनेकी कामनाकी और कामना

की प्रेरणाकी, तबतो कामनाने रसकेद्वारा गन्ध और गन्धके-द्वारा नासिकाका रूप ग्रहण किया । ये पांच ज्ञानेन्द्रियां या जाननेवाली इन्द्रियां हुईहैं। फिर ब्रह्मने श्वास लेनेकी कामना-की, तब राजसी कामनाने प्राण अपान समान व्यान और उदान नामक पांचों प्राणोंका रूप धारण किया । इसके अनन्तर अस्ति भातिप्रियने अखिल प्राज्ञोंकेरूपद्वारा बोलनेकी इच्छाकी, और इच्छाको प्रेरणाकी, तब राजसी इच्छाने शब्दकेद्वारा वागिन्द्रिय या वाणीका रूप धारण किया । उक्त ब्रह्मने ग्रहण करनेकी इच्छाकी, तो इच्छाने स्पर्शकेद्वारा पाणी या हाथका रूप ग्रहण किया, फिर ब्रह्मने चलनेकी इच्छाकी, तव इच्छाने अपनेको रूपकेद्वारा पाद या पैरोंके रूपमें परिवर्तित किया । फिर ब्रह्मने आनन्द लेनेकी इच्छाकी, तबतो इच्छाने रसके द्वारा उपस्थ इन्द्रियके रूपको धारण किया। फिर उक्त ब्रह्मने त्यागनेकी इच्छाकी, तब इच्छाने गन्धकेद्वारा गुदा इन्द्रियका रूप धारण किया । ये पांचों कर्मेन्द्रियां या कर्म करनेवाली इन्द्रियां बनगईं । बुद्धि मन पांचज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां और पांचप्राणोंको मिलाकर १७ तत्वोंका यह सूक्ष्मशरीर बन गया। इतनी सूक्ष्म-सृष्टिहै । इसी सूक्ष्मशरीरके कारण सच्चिदानन्द ब्रह्म पर अब तीनकोश या आवरण और आगये। बुद्धि प्रधान पांच ज्ञानेन्द्रि-यां विज्ञानमयकोश, तथा मन जिसमें प्रधान पांच ज्ञानेन्द्रियां मनोमयकोश, एवं प्राणप्रधान पांचकर्मेन्द्रियां प्राणमयकोशहै ।

मुख्य अंग, सूर्य नामवाले शरीरको बनाया, इसी उपाधि या स्थानमें निवास करनेकेद्वारा अपरब्रह्मका नाम अब वैश्वानर होगया। क्योंकि यह विश्व नामवाले सभी नरोंके नेत्रोंको प्रकाशदेताहै, इसीसे इसका नाम वैश्वानर० हुआहै। अपरब्रह्मने इन तैजस जीवोंके बाह्यविषयोंके भोगनेयोग्य और इनकेही कर्मोंके फल स्वरूप तथा मैथुनी या स्त्रीपुरुषोंकेद्वारा सृष्टि उत्पन्न करने योग्य समग्र स्थूलशरीरोंको रचदिया या तैजस नामवाले सभी जीवोंपर इन स्थूलशरीरोंका खोल चढ़ादिया। ब्रह्मात्मा पर अब यह अन्नमय नामका पांचवां कोश या आवरण आगया। उसके अनन्तर वे सभी तैजसजीव, आगेकेलिये स्थूलशरीरोंको बनानेकेलिये स्वतन्त्र होगए। यह कथा ऐतरेय उपनिषद् खण्ड २ में "ता एनमब्रुवन्नायतनं नःप्रजानी हि यस्मिन्प्रतिष्ठता अन्नमदामेति"– वे जीव परमात्मासे बोलेकि हमारेलिये स्थान बनादीजिए, जिसमें स्थित होकर हम लोग अन्न खासकें। इसश्रुतिके आधारपर लिखी गईहै। जिससे कि ये तैजसजीव, मोक्ष अवस्थामें पहुँचकरभी आकाश आदि पांचभूतोंको और इन भू या पृथिवी आदि लोकोंका अभाव या इन्हें लीन नहीं करपाते, अतः इतनी सृष्टि अपरब्रह्मके संकल्पसे रचीगईहै और अन्तमें उसीकी इच्छासे लीन होवेगी। यही बात ब्रह्म सूत्र अ० ४ पाद ४ जगद् व्यापार वर्जं

प्रकरणादसंनिहितत्वात् ॥१७॥ प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारक मंडलस्थोक्तेः ॥१८॥ इन दोनों सूत्रों-में कहीगईहै । इनका अर्थ प्राप्यब्रह्म प्रक-में लिखाहै । सच्चिदानन्द ब्रह्मात्माके रूप प्राज्ञ और प्राज्ञके रूप तैजस नाम-वाले प्रत्येक जीवने इस उपाधि या स्थानकेद्वारा अपना विश्व नाम ग्रहण किया। एकपाद ब्रह्म सत्यज्ञानानन्दके इन्हीं स्थूल-शरीरोंके द्वारा देव दानव मानव पशु पक्षी कीट और पतंग आदि अनेक नाम होगए ।

पहिली इच्छा, निर्गुण शुद्ध सच्चिदानन्द अनन्तब्रह्ममें हुई। उसीकेद्वारा उसका मायाकेसहित ईश्वरान्तर्यामी नाम होगया और अविद्याकेसहित उसके प्राज्ञ नाम होगये । दूसरी इच्छा, सूक्ष्मशरीर उत्पन्नकरनेकेलिये ईश्वरमें और प्राज्ञोंमें हुई। उसी सूक्ष्मशरीरकेद्वारा, ईश्वरका नाम अपरब्रह्म हुआ अन्य प्राज्ञोंके नाम तैजस होगये। तीसरी इच्छा, पांच स्थूलभूतोंकी उत्पत्ति केलिये अपरब्रह्ममें हुई । और तैजस जीवोंमें इच्छा, उन स्थूल-भूतों तथा भूतोंके कार्योंके भोगनेकेलिये हुई। अबभी सुषुप्तिके अनन्तर होतीहै ।

इसप्रकार ब्रह्मात्माकाही सृष्टिकालमें होनेवाली अब सुषु-प्तिकी मध्य तुरीय अवस्थामें इच्छारहितहोनेसे शुद्ध अकर्ता अभोक्ता रूपहै, और मांडूक्य उपनिषदकी "नान्तःप्रज्ञं" इत्यादि

श्रुतियोंसे आत्माब्रह्म यह नामहै। और यह जाग्रत स्वप्न और सुषुप्तिकी अन्तिम अवस्थाकी अपेक्षासेभी ब्रह्महै। तात्पर्य यहकि इसका अकर्ता अभोक्ता शुद्ध आत्माब्रह्म यह नामहै। तथा इसीका हृदयके मध्य सुषुप्तिकी अन्तिम कारण अवस्थामें भोक्ता रूप प्राज्ञ नामहै। एवं स्वप्न अवस्था कंठमें निवासहोनेसे ब्रह्मात्माका ही प्राज्ञकेद्वारा भोक्ता और कर्तारूप तैजस नामहै। और जाग्रत अवस्था दाहिने नेत्रमें निवासहोनेसे सच्चिदानन्द ब्रह्मात्माकाही प्राज्ञ एवं तैजसकेद्वारा भोक्ता कर्ता और कर्म करताहुआ विश्व नामहै। इसका विश्व नाम इसलिये हुआहै कि इसमें समस्त विशेषज्ञान बाहर आचुकेहैं। इसरीतिसे वह एकसे अनेक हुआहै। ऐतरेय उप० के अनुसार, वाणीका देवता अग्निहै, नासिकाका देवता वायुहै, नेत्रका देवता सूर्यहै, श्रोत्रकी देवता दिशाएं हैं, त्वचाके ओषधि और वनस्पतियां देवताहैं, मन या अन्तःकरणका देवता चन्द्रमाहै, गुदाका देवता यमहै, और उपस्थका जल देवताहै। इस पाठको अन्य देवताओंकाभी उपलक्षण समझना चाहिये। अतः हाथोंकादेवता इन्द्रहै, पादका देवता विष्णुहै, और रसनाका देवता वरुणहै।

अस्तु "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" छान्दोग्य० की इस श्रुतिसे यह समस्तविश्व ब्रह्मकाही स्वरूपहै। मुंडक उप० मुंक २ खंड १ मंत्र १ "तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फु-

लिंगाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः । तथाक्षरा-द्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति"

हे सोम्य–प्रिय, वह सत्यहै कि जैसे प्रज्वलित अग्निमेंसे उसीके समान रूपवाली हजारों चिन्गारियां अनेक प्रकारसे प्रकट होतीहैं उसीप्रकार अविनाशीब्रह्मसच्चिदानन्दसे अनेक प्रकारके चराचर पदार्थ उत्पन्नहोतेहैं और अन्तमें उसीमें लीनहोजातेहैं। इस मंत्रसे यह बात कहीगईहै कि यह जगत ब्रह्मकाही विवर्तहै। विवर्त नाम उसकाहै जो वस्तु अपने स्वरूपको न त्यागकर दूसरे रूपमें प्रतीत होनेलगे या भासनेलगे । जैसाकि अग्नि, अपने उष्ण प्रकाश या गरम चानणेके रूपको न त्यागती हुई चिन्गारियोंके रूपमें भासने लगतीहै। जैसाकि सुवर्ण या सोना, अपने रूपको न त्यागताहुआ कंगन आदि आभूषणोंके रूपमें प्रतीतहोताहै। और जैसे नदी आदिका जल, अपने रूपको न छोड़ताहुआ तरंग या लहरोंके रूपमें प्रतीतहोताहै । इसीप्रकार एकपादब्रह्म, अपने सच्चिदानन्दरूपको न त्यागताहुआ नामरूप या कारण कार्यके रूपमें भासने लगताहै । इसीका नाम विवर्तवाद या विशेषरूपसे वर्तना कहाजाताहै। यह विषय मनुष्यके दृष्टान्तसे भलीप्रकार समझमें आसकताहै । इसीलिए पहले दृष्टांतको लिखदेना उचित प्रतीतहोताहै । जिससेकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारोंही नाम, वर्ण विभाग या डिपार्टमैंटके

वाचकहैं। परन्तु आज ये चारों नाम जाट गूजर आदि कर्म रहित नामोंकी भान्ति केवल वंशकी परम्परा पर आरूढ होगएहैं, इसलिए इन नामोंका कर्मपर उदाहरण न लेकर, यूं समझना चाहिए—जैसाकि मनुष्य, एक सामान्य नाम और रूपवाली वस्तुहै, जबतक इसके साथ किसी विशेष कर्मका सम्बन्ध नहीं होजाता तबतक यह केवल मनुष्यही कहलाताहै। जब मनुष्यके साथ किसी अध्यापन या पढ़ाना आदि विशेष कर्मका सम्बन्ध हुआ तब इसका केवल मनुष्य नाम नहीं रहताहै। इसका आचार्य उपाध्याय राजा, मंत्री, व्यापारी, किसान, नाई या कुम्भार आदि विशेष या मिश्रित नाम होजाताहै। और पुत्र आदिके सम्बन्धसे पिता आदि मिश्रित नाम होजाताहै। यह तो मनुष्य-के दृष्टान्तसे मनुष्यका विवर्त सिद्ध हुआ। इसीप्रकार अब दार्ष्टांतमें ब्रह्मसच्चिदानन्दका विवर्त समझना चाहिए। वह इस-प्रकारहै—सत्यज्ञानानन्द या सत् चित् आनन्द या अस्तिभाति प्रिय, यह एक सामान्यरूपहै, जबतक इसमें अनन्तत्व या अन-न्तपनाहै, तबतक यह परब्रह्म या निर्गुणब्रह्म कहलाताहै। अनन्त ब्रह्मका ऐसा सच्चिदानन्दरूप, केवल महाप्रलयकी मध्य अवस्थामेंहीहै। जब अनन्तब्रह्म या सबसे बड़े सच्चिदानन्दके एकपादके साथ शुद्धसात्विकी इच्छाका सम्बन्ध हुआ और मलिनसात्विकी कामनाका मेल हुआ, तब उसका विशेष या मिश्रित नाम अन्तर्यामी और प्राज्ञ नाम होगया। ब्रह्मका ऐसा

कारण और भोक्तारूप, महाप्रलयकी अन्तिम अवस्थामें हुआ। ब्रह्मकी प्रेरणासे जब इच्छाने महतत्व और बुद्धि तथा बुद्धिकेद्वारा मन या अहंकार और मनकेद्वारा पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच प्राण और पांच॰कर्मेन्द्रियोंके रूपको धारण किया, तब उसका अन्तर्यामी और प्राज्ञकेद्वारा विशेष या मिश्रित नाम अपरब्रह्म और तैजस नामहुआ। सच्चिदानन्दब्रह्मका ऐसा भोक्ता और कर्तारूप, कर्तापनकी स्वप्न अवस्था या सूक्ष्म शरीरकी पूर्ण अवस्थामें हुआहै। ब्रह्मकी प्रेरणासे जब इच्छाने अपरब्रह्मद्वारा रचेगए स्थूल शरीरोंके रूपको धारण किया, तब उसका अन्तर्यामी और प्राज्ञ तथा सूत्रात्मा एवं तैजसकेद्वारा विशेष या मिश्रित नाम वैश्वानर और विश्वनामहुआहै। सच्चिदानन्दब्रह्मका ऐसा भोक्ता कर्ता और कर्म करताहुआ रूप जाग्रत अवस्थामें होगया। इसप्रकार जगत्, सच्चिदानन्दब्रह्मकाही विवर्त या विशेष वर्तना कहलाताहै।

तात्पर्य यह है कि बृहदा॰ अध्याय २ तीसरे ब्राह्मणकी "द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे" इत्यादि श्रुतियोंसे ऐसा समझना चाहिए कि एकपाद विशुद्धसच्चिदानन्दब्रह्मके, ब्रह्म अन्तर्यामी अपरब्रह्म और वैश्वानर ये चारोंपाद सूर्य देवता विषयकहोनेसे अधिदैव कहेजातेहैं। क्योंकि ब्रह्मका देवताओंमें सबसे उत्तम तथा बड़ा आदित्य रूपहीहै। उसी ब्रह्मके आत्मा प्राज्ञ तैजस और विश्व ये चारोंपाद, मनुष्यशरीर विषयकहोनेसे अध्यात्म

कहलातेहैं। क्योंकि ब्रह्मका अध्यात्माओंमें, कर्मयोनिहोनेसे सबसे उत्तम मनुष्य शरीरही है । इन चारोंपादोंमें तीन तीन पाद विवर्तहैं और चौथा ब्रह्मात्मा इनमें अनुगत या व्यापकहै। या यूं कहोकि ब्रह्मसच्चिदानन्दही नामरूपात्मक जगत्का अभिन्न निमित्तोपादानकारणहै। इस प्रपंचमें, सत्यज्ञानानन्दकी माया या इच्छाने तो अपने पूर्वरूपका त्याग न करतेहुए प्रत्येक वस्तुके नामरूपका स्वरूप ग्रहण कियाहै। वस्तुहै तथा भासतीहै और प्रियहै, इस रीतिसे प्रत्येक वस्तुके साथ ब्रह्मका सच्चिदानन्द या अस्ति भाति प्रिय रूप अनुगत या लगा हुआहै। एक वस्तु यदि एक व्यक्तिको प्रिय नहींहै तो वही वस्तु दूसरे व्यक्तिको अवश्यही प्यारीहै। अतः वह प्रियरूपहीहै।

"वहुस्यां" बहुत होजाऊं। "तदात्मानं स्वयं कुरुत" उसने स्वयंही अपने आपको जगत्के रूपमें बनालिया । इन श्रुतिओंके अनुसार, सत्यात्माब्रह्मकी कीहुई बहुभवन प्रतिज्ञा सत्य या सफल होगई।

इसके बिपरीत क्रमसे सत्यात्माब्रह्मके विवर्तकी समाप्ति समझलेनीचाहिए। वह इसप्रकारहै—जिस समय हमारी वृत्ति अपने शरीरकी या किसी दूसरी वस्तुकी बनावट पर ध्यान देतीहै, तब यह सच्चिदानन्द ब्रह्मात्मापर अन्नमय नामका कोश या, पड़दाहै, यह पांचवां पड़दाहै, इसीकेद्वारा ब्रह्मात्माका वैश्वानर और विश्वनाम होताहै। जब हमारी वृत्ति किसी स्थूल कार्यको

करतीहुई उसमें अंधाधुंद लगीहुईहै, तब यह ब्रह्मात्मापर प्राण-मय नामका कोश या आवरणहै, यह चौथा कोशहै। जब हमारी वृत्ति किसी कार्यको निश्चय न करनेसे उसमें संकल्प और विकल्प करतीहै, तब यह आनन्दब्रह्मात्मापर मनोमय नामका कोश या ढकनाहै, यह तीसरा कोशहै। जब हमारी वृत्ति किसी कार्यको निश्चित करलेतीहै, तब यह ब्रह्मात्मापर विज्ञानमय नाम-का कोश या आवरणहै, यह दूसरा कोशहै, यह ब्रह्मात्माकी कर्ता अवस्थाहै। इसीकेद्वारा ब्रह्मात्माका नाम अपरब्रह्म और तैजस होताहै। जब हमारी वृत्ति किसी अनुकूल वस्तुके दर्शन प्राप्ति या उसके भोगसे एकाग्र होगईहै, या सुषुप्तिकी आदि या महा-प्रलयकी आदि अवस्थामें या सविकल्प समाधिमें या ब्रह्मलोकमें जाकर क्रममुक्तिमें प्राप्तहुए अपरब्रह्मके समान सत्यसंकल्प आदि ऐश्वर्यके सुखभोगमें एकाग्र होतीहै, तब यह ब्रह्मात्मापर, माया अविद्या कारण या बीजरूपी आनन्दमय नामका कोश या आवरणहै, यह पहिला कोशहै. यही ब्रह्मात्माकी कारणरूप और भोक्तारूप अवस्थाहै, इसीकेद्वारा सदात्मा ब्रह्मका नाम अन्त-र्यामी और प्राज्ञहै। जब हमारी वृत्ति, सुषुप्तिकी मध्य या महा-प्रलयकी मध्य अवस्थामें या निर्विकल्प समाधिमें या विदेह-कैवल्यमुक्तिमें लीन होजातीहै या होजाएगी, तब यह सच्चिदानन्द ब्रह्मात्माकी मायातीत अविद्यातीत कारणातीत गुणातीत और कोशातीत रूप तुरीय अवस्थाहै, इसमें सत्यात्माब्रह्मकी कारणता

या बीजरूपताके समाप्त होजानेसे उसमें अन्तर्यामी ईश्वरता और प्राज्ञ ईश्वरताके समाप्त होजानेपर, सत्यज्ञानानन्दब्रह्मात्मा-का, निर्गुण निराकार और शुद्ध ब्रह्मनाम होगयाहै, इस अवस्थामें सच्चिदानन्दब्रह्मात्माका सम्पूर्ण विवर्त समाप्त हो-जाताहै।

विशेष विचार–

जोलोग, विश्वनामी जीवोंका समुदाय वैश्वानरहै, और तैजसोंकी समष्टि सूत्रात्माहै एवं प्राज्ञोंकी समष्टिका नाम ईश्वरान्तर्यामीहै ऐसा ईश्वरकारूप बतारहेहैं–उनका यह कथन इस कहावतके समानहै–जैसे कोई कहेकि एक मूर्ख मूर्खहै और मूर्खोंका समूह परिडतहै, किन्तु यह असंभवहै। क्योंकि सबके सब मूर्ख ही तो हैं, ऐसेही उक्त पक्षमेंभी सब मलिनसत्वगुणप्रधान अविद्यावाले जीवहीहैं किन्तु इनमें शुद्धसत्वगुणप्रधानमायायुक्त कोईभी एक उपास्य तथा फलप्रदाता ईश्वर सिद्ध नहीं होता। औरजोलोग, ब्रह्ममें सृष्टिका अध्यारोप, अपवादकेलिये है ऐसा मानतेहैं, अर्थात् उपनिषदोंमें जो अनेक प्रकारसे सृष्टिकी उत्पत्ति-का वर्णनहै, वह अध्यारोप नाम केवल कल्पनामात्रहै, और वह अपवादकेलिए या निषेधकेलियेहै। वास्तवमें ब्रह्मसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई नहींहै, ऐसा मानतेहैं–इस पक्षमेंभी सृष्टि स्वरूप-सेही अनादि सिद्ध होतीहै, प्रवाहरूपसे नहीं। क्योंकि यह प्रवाह-रूपसे तबही अनादि बनसकतीहै, जबकि इसकी उत्पत्ति और

प्रलयको मानलियाजाए। जैन आदि अन्यकई मतभी सृष्टिको स्वरूपसे अनादिमानतेहैं। इसीलिये उनके मतमें सृष्टिकर्ता कोई ईश्वर नहींहै। सृष्टिकी उत्पत्ति न माननेसे उक्त पक्षभी इस अंशमें जैन आदि मतोंके समानही होजाताहै। और जोलोग, छान्दोग्य की "सदेव" श्रुतिके सत् इस पदसे तथा तैतरीयकी "सोऽकामयत" श्रुतिके स, इस पदसे एवं ऐतरेयकी 'आत्मा वा०" श्रुतिके आत्मा, इस पदसे शुद्धसत्वगुणप्रधानमायाविशिष्ट सर्वज्ञ आदि गुणोंवाले व्यापकब्रह्मको ग्रहणकरके उसको जगत्की उत्पत्तिका अभिन्न निमित्तोपादान कारण बतारहेहैं, उनके मतमें ये दोष अनिवार्य प्राप्त होरहेहैं। १—यदि व्यापक ब्रह्म, शुद्ध-सत्वगुणप्रधानमायाको अपनेलिये रखकर और मलिनसत्वगुण आदि गुणोंकेद्वारा अन्य जीवोंका कारण बनकर उनकी उत्पत्तिकरके उन जीवोंमें अपने सर्वज्ञ आदि गुणोंके सहित स्थिति पारहा-है, तब प्रत्येक शरीरकी उपाधिके भेदसे जीवभेदके समान जितनेभी जीवहैं, उतने ब्रह्मभी भिन्न भिन्नही मानने पड़ेंगे, अर्थात् ब्रह्मभी असंख्यही मानने पड़ेंगे, सबमें एकही ब्रह्म नहीं बनसकेगा।

२—उसे व्यापक माननेसे अपरब्रह्मका लोकविशेष ब्रह्मलोकभी सिद्ध नहीं होसकेगा तथा श्रुतियों और ब्रह्मसूत्रके सूत्रोंसे सिद्ध हुई क्रममुक्ति भी नहीं बनपड़ेगी।

३—यदि उसको लोकविशेष ब्रह्मलोकमेंभी अपरब्रह्मके रूपमें

मानलोगे तब शुद्धसत्वगुणकाभी भेद करनाहोगा, एक अतिशुद्ध सत्वगुणप्रधानहोनेसे बड़ा ब्रह्म और दूसरा केवल शुद्धसत्वगुण-प्रधानहोनेसे छोटा ब्रह्म, ऐसा मानतेहुए ब्रह्मको दो रूपोंमें खंडित करना होगा अर्थात् उसके वैश्वानर और सूत्रात्मा या अपरब्रह्म इनदोनों पादोंको आदित्यस्थानी ब्रह्मलोकमें एकदेशी बनातेहुए अन्तर्यामी और ब्रह्मनामके दोनों पादोंको सर्वव्यापक कहतेहुए सर्वज्ञ ब्रह्मको दो भागोंमें बांटना होगा ।

४—ब्रह्मका, जीवोंमें अन्तर्यामीरूपसे निवासहोनेपर अपने अत्यन्त संनिहितहोनेसे जीवको मुक्तिमें ब्रह्मकीही समीपता प्राप्त करनीहोगी किन्तु श्रुतियों शास्त्रोंसे सिद्ध हुई स्वस्वरूपावस्थिति कैवल्यमुक्ति नहीं प्राप्तहोगी ।

५—बृहदा. अ० ३ ब्राह्मण ७ श्रुति ८ नान्योऽतोस्ति द्रष्टा नान्योऽतोस्ति श्रोता नान्योऽतोस्ति मंता नान्योऽतोस्ति विज्ञातैष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽन्यदार्तम् ।

आत्मासे भिन्न कोई द्रष्टा या देखनेवाला नहीं, आत्मासे भिन्न कोई सुननेवाला नहींहै, आत्मासे अलग कोई मननकरनेवाला नहींहै आत्मासे भिन्न कोई जाननेवाला नहींहै, यही तेरा आत्मा या अपना स्वरूप अन्तर्यामीहै, इससे भिन्न सब विनाशीहै । यह श्रुतियोंका अर्थहै । इन श्रुतियोंने एक शरीरमें एकही द्रष्टा श्रोता मंता विज्ञाता और अन्तर्यामी मानाहै । इन श्रुतियोंके

विपरीत, शरीरमें जीव और सर्वज्ञ ब्रह्म दोनोंको मानलेनेसे पांचवां दोष श्रुतियोंसे विरोधरूप होजाएगा। तात्पर्य यहहै कि इन लोगोंके मतमें, शुद्धसत्वगुणप्रधान सर्वज्ञ व्यापक ब्रह्मको जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण माननेसे उक्त ये पांचों अच्छेद्य दोष प्रप्त होगएहैं।

अब और लीजिए। एक भद्रपुरुषने अपनी पुस्तकमें, सर्वव्यापक सर्वज्ञ आदि गुणोंवाले ब्रह्मको जगत्की उत्पत्तिका केवल निमित्त-कारण मानाहै। इसमें अब प्रश्न यह होताहै कि वह जीवोंके भीतरही सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामीरूपसे विराजमानहै, अथवा बाहरभी है। १—यदि वह जीवोंके भीतर वर्तमानहै तबतो प्रत्येक शरीरकी उपाधिके भेदसे, जीवभेदके समान जितने भी जीवहैं उतनेही ब्रह्मभी मानने पड़ेंगे। अर्थात् ब्रह्मभी असंख्यही मानने होवेंगे। सबमें एकब्रह्म नहीं बनसकेगा। २—यदि वह बाहरभी सर्वत्र व्यापकहै। तब उसे मल मूत्र और जूते आदि अपवित्र स्थानोंमेंभी बैठाना होगा, यदि ऐसा स्वीकारहै। तो शोकहै ऐसी बुद्धिपर, जोकि अपने परमश्रद्धेय उपास्य और प्राप्य पूज्य ब्रह्मको ऐसे निकृष्ट स्थानोंमेंभी व्यापक बतारहोहै। ३—किसीभी केवल निमित्तकारणका कार्यमें प्रवेश नहीं होताहै। जैसाकि कुम्भारका घटमें और तंतुवाय नाम जुलाहेका पटमें प्रवेश नहींहै। इसीप्रकार सर्वज्ञ ब्रह्मकोभी देशविशेष स्थायी परिछिन्नही मानना पड़ेगा। देखोजी, इस वाक्यसे पाठकोंको

सावधान करनाहै, पुस्तकमें जहांतहांपर इसके लिखनेका और कुछ प्रयोजन नहींहै। देखोजी, उसने इसप्रकार अपने ग्रन्थमें, कठ० प्रश्न आदि उपनिषदोंसे एवं वेदान्तदर्शन अर्थात् ब्रह्मसूत्रके सूत्रोंसे सिद्धहुए अपरब्रह्मको न मानतेहुए तथा उन्हीं ग्रंथोंद्वारा सिद्ध हुए अपरब्रह्मके लोकविशेष ब्रह्मलोकको न मानते-हुए और योगदर्शनके द्वारा सिद्धहुए पुरुष विशेष ईश्वरको राजाके समान न मानतेहुए इन सबके विपरीत, उसको स्वरुपसे व्यापक बतातेहुए वास्तवमेंही उसका और उसकी उपासनाको खंडित करदियाहै।

देखोजी, आपने जिस उद्देश्यको लक्ष्य रखकर हिन्दु जातिको एकसूत्रमें पिरोना चाहाथा और जिस एक ईश्वरकी उपासना कराने-केलिए अन्यान्य सभी देवी देवताओंका खण्डन किया, फिर आपनेही उस अपरब्रह्म या पुरुषविशेष ईश्वरको उसे व्यापक बतातेहुए वास्तवमेंही उसे खण्डित करदिया। इसीसे उसका अनन्यभक्तभी यह कहताहै कि ईश्वर, सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापकहै। परन्तु यह कथन उपनिषदों ब्रह्मसूत्र तथा योग-दर्शन और अपने अनुभवके विपरीतहोनेसे अन्धविश्वास पूर्वक-हीहै। देखोजी, किसीने कहाकि वह वस्तु वाजारमें सर्वत्र प्राप्तहै, परन्तु वह मिलती नहीं किसी एकभी दुकानपर, ऐसोही उसके मतकीभी ईश्वरकी व्यापकताके विषयमें वातहै। क्योंकि न तो अपने अन्दरमेंही अन्य किसी दूसरे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वरका

अनुभव होरहाहै, और नाहीं अन्य किसी मनुष्य पशु पक्षी आदि तथा मलमूत्र आदि अपवित्र वस्तुओंमेंही सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वरकी भावना बनसकतीहै । इसप्रकार इस मतकेद्वाराभी प्रतिशरीरमें जीवके समान अलग २ असंख्य ईश्वर बनाकर वास्तवमेंही उसे खण्डित किया जारहाहै । इसी भूलकेद्वारा जनताको ईश्वरको उपासनासे वंचित किया जारहाहै । इसीलिए जनता आज, अपनेसे भिन्न जिस वस्तुमें अधिक गुणोंको देखतीहै, उसेही ईश्वर मानने लगतीहै । क्योंकि उसके यहां पुरुष विशेष ईश्वर नहींहै । अतः उसको इस महती भूलका सुधार करनेकेलिए अपनाही कर्तव्य समझकर अविलम्ब प्रयत्नशील होजानाचाहिए ।

परन्तु मेरे पक्षमें ऐसा कोई दोष नहींहै । क्योंकि मैंने तो पूर्वमें ऐसा लिखाहै कि सत्व आदि तीनों गुणोंके युक्त एकपाद सच्चिदानन्दब्रह्म, अपने समस्त प्राज्ञोंकेरूपद्वारा जगत्का अभिन्न–निमित्तोपादन कारणहै । अतः उसका कार्य जगत्भी त्रिगुणात्मकहीहै । शुद्धसत्वगुणप्रधान सर्वज्ञ आदिगुणोंसे संपन्न आदित्यनिवासी उपास्य और प्राप्य अपरब्रह्म, अपने कार्यको स्वतंत्ररूपसे कररहाहै । मलिनसत्वगुण आदि वाले तथा अल्पज्ञ आदि गुणोंवाले जीव, अपना २ कार्य करनेमें स्वतंत्रहैं । परन्तु वास्तवमें यह सब प्रपंच अद्वैत ब्रह्महै । अस्तु, यह बात भली भांति समझलेनी चाहियेकि उपनिषदोंमें जहांपर, ब्रह्म या ईश्वरको

व्यापक बतायागयाहै । जैसाकि "ईशावास्यमिदं सर्वं" यह सब जगत् ईश्वरसे व्याप्तहै, वहांपर ईश्वर या ब्रह्म शब्दको सामान्य सच्चिदानन्दका बोधक जाननाचाहिये जोकि वास्तवमें अपनाही स्वरूपहै । और जहांपर ईश्वर या ब्रह्मको सर्वज्ञ सर्व-शक्तिमत्ता आदि धर्मोंके सहित बतायाहै—वहांपर ब्रह्म या ईश्वर शब्दसे आदित्यस्थानी उपास्य ब्रह्म ईश्वरको ग्रहणकरनाचाहिये। तबही आप उपनिषदोंके ब्रह्म या ईश्वरको समझसकेंगे। अन्यथा उलझनमें पड़ जाओगे ।

सगुण ब्रह्म—

मुंडक उपनिषद् मुंडक २ खण्ड १ मंत्र ४

अग्निमूर्धा चक्षुसी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः । वायु प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी एष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ इस सत्यज्ञानानन्दका अग्नि या द्यु लोक मस्तकहै, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्रहैं, सब दिशाएं कानहैं और प्रकट वेदरूपी वाणीहै, तथा वायु प्राणहै और समस्त जगत् हृदयहै एवं पृथिवी पैरहैं, यही सब प्राणियोंका अन्तर आत्माहै, अर्थात् स्वस्वरूपहै । इसी सगुणब्रह्मके विषयमें यजुर्वेद और ऋग्वेदके पुरुषसूक्तमें ऐसा कहा है—**सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्**—पुरुष या सच्चिदानन्द ब्रह्म, सहस्र नाम असंख्य शिरोंवालाहै, एवं

सहस्र नाम असंख्य नेत्रोंवालाहै तथा सहस्र नाम असंख्य पैरों-वालाहै । इस मंत्रके विपरीतहोनेसे ईश्वर या जाव नामकी कोई-भी एक व्यक्ति सगुणब्रह्म नहीं कहीजासकती। क्योंकि अपरब्रह्म अन्तर्यामी आदित्यस्थानीहै, और जीवात्मा, मनुष्य आदि स्थानीहै। इसीसे सूत्रात्मा ईश्वर, पूरा सगुणब्रह्म नहींहै। इससे यह सिद्ध होगयाकिएकपादविशुद्धब्रह्मसच्चिदानन्दही सृष्टिकालमें, सत्व आदि तीनगुणोंके सहित या शुद्धसत्वगुणप्रधानमाया उपा-धिविशिष्ट और मलिनसत्व गुणप्रधान अविद्या उपाधि अर्थात् दोनों उपाधियोंके सहित सगुणब्रह्म कहाजाताहै। तात्पर्य यहहै जैसाकि एकव्यक्ति एकवृक्षहै, बड़े और छोटे वृक्षोंके समूहका नाम वनहै। इसीप्रकार बड़े और छोटे असंख्य जीवोंके समुदाय-का नाम सगुणब्रह्महै।

निर्गुण शुद्ध सच्चिदानन्द अनन्तब्रह्मको शुद्धभूमिके समान जाननाचाहिये । सगुणब्रह्मको, उस शुद्धभूमिमें, वन या बगीचेके तुल्य जानलेना । ईश्वरान्तर्यामी अपरब्रह्मको, उस वनमें बड़े वृक्ष पीपलके सदृश समझना । विष्णुशिव-आदि जितनेभी देव देवीहैं और दानव मानव आदिहैं । इन्हें एक दूसरेकी अपेक्षा बड़े छोटे अन्य वृक्षोंके समान समझना-चाहिए। इसप्रकार एकपाद सच्चिदानन्द सगुणब्रह्म, वृक्षोंकी समष्टिरूप वनके समानहै।

इसप्रकार वैदिक ब्रह्म विचारमें सगुणब्रह्म नामका दूसरा प्रकरण समाप्त हुआ।

३—उपास्यब्रह्म

सत्यज्ञानानन्दके चारपादोंमेंसे एकपादका सबसे बड़ा अंश, शुद्धसत्वगुणप्रधानमायाशक्तिविशिष्ट आदित्यनिवासी अन्तर्यामी अपरब्रह्महोनेसे आदित्यरूपसे उपास्य या उपासना करनेकेयोग्य ब्रह्महै।

एकपाद ब्रह्मके विशेषरूप अपरब्रह्मान्तर्यामी ब्रह्मका विशेषस्थान-तैतरीय० में ब्रह्मानन्दबल्लीके आठवें अनुवाकमें श्रुति—"स एको ब्रह्मण आनन्दः"—वह ब्रह्मका एक आनन्दहै। "स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः"—वह जो इस पुरुषमेंहै और जो उस आदित्यमेंहै वह आनन्द दोनोंमें एकहै। तैतरीय० भृगुवल्लीके दश अनुवाकमें श्रुति—"स यश्चायं पुरुषे यस्चासावादित्त्ये स एकः"—वह आनन्द जो इस पुरुषमेंहै और जो उस आदित्य या सूर्यमेंहै वह दोनोंमें एकहै।

छान्दोग्य. के अध्याय १ खंड ६ में श्रुति—"य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्य केश आ प्रणखात्सर्व एव सुवर्णः तस्य पुंडरीकमेवमक्षिणी"—जो यह आदित्यके अन्दरमें सुवर्णमय

पुरुष देखाजाताहै सुवर्ण जैसी दाढ़ी मूंछवाला और सुवर्ण जैसे केशोंवालाहै तथा यह नखसेलेकर सब सुवर्ण या सोने जैसा है और उसके नेत्र कमल जैसेहैं। छान्दोग्य० अ० २ खण्ड १ में श्रुति-"असौ वा आदित्यो देवमधु" वह आदित्य देवताओंका मधुहै। तात्पर्य यहकि वे इस मधु सहद या अमृतकेद्वारा जीवन धारणकरतेहैं। बृहदा० अ० २ ब्राह्मण ३ "द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च"—ब्रह्मके दो रूपहैं, एक मूर्त दूसरा अमूर्तहै। इसके आगे श्रुतिने तेज जल और पृथिवी इनको मूर्त बतलायाहै तथा आकाश और वायुको अमूर्त बतलायाहै। मूर्तका सार "य एष तपति—जो यह तपने वाला सूर्यमण्डलहै और अमूर्तका सार "य एष एतस्मिन् मंडले पुरुषः-जो इस मंडलमें पुरुषहै। यह देवतामें ब्रह्मका रूप कहाहै। अब अध्यात्म कहाजाताहै। मूर्तका सारभूत, पुरुष-का दाहिना नेत्रहै और अमूर्तका सार दाहिने नेत्रमें पुरुषहै। यह श्रुतियोंका अर्थहै। इसप्रकार ब्रह्मका सर्वसाधारण जीवोंमें मनुष्यरूप- कर्मयोनिहोनेसे सबसे उत्तमहै, तथा ब्रह्मकाही उच्च-कोटिके प्राणी देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ और सबसे बड़ा सविता या सूर्यरूपहै। इस रीतिसे पूर्वोक्त उपनिषद् वाक्योंसे यह सिद्ध होगया कि सत्यज्ञानानन्दब्रह्मके विशेषरूप अन्तर्यामी अपरब्रह्म-का, कारण और सूक्ष्मशरीरकी अपेक्षा, स्थूलरूप या स्थान,

आदित्य सविता या सूर्यहीहै । यही शुद्धसत्वगुणप्रधानमायापति ब्रह्मका शरीरहै ।

आदित्य ब्रह्म सच्चिदानन्दके परब्रह्म आदि नाम–

परब्रह्म—हे आदित्य, महाप्रलयकी मध्य अवस्थामें जब आप इच्छा रहितथे तब आपका नाम परब्रह्म या निरपेक्षब्रह्मथा, ऐसे परब्रह्म आदित्यदेव, आपको हमारा नमस्कारहै ।

सर्वेश्वर अन्तर्यामी–हे आदित्यदेव, महाप्रलयकी अन्तिम अवस्थामें, जब आपने शुद्धसात्विकीमाया या इच्छाको स्वीकार किया तब आपकाही नाम सर्वेश्वर अन्तर्यामी होगया । जिससेकि आप शुद्धसत्विकीमायाके प्रेरकहैं और प्रार्थना करनेपर सर्व प्राणियोंकी बुद्धियोंके प्रेरकहैं, तथा आप मायाके आधीन नहीं हो, अतः हे सर्वेश्वर अन्तर्यामी आदित्यदेव, आपको हम लोगोंका प्रणामहै ।

कारणब्रह्म—हे आदित्यदेव, आपका कारणब्रह्म नाम इसलिये तो पड़ाहै कि आप सृष्टिकी हेतुरूपा इच्छाको हिरण्यगर्भरूप धारणकरनेकेलिए प्रेरणा करतेहो और अपने स्वरूप भूत, हिरण्यगर्भ सूत्रात्मा या अपरब्रह्मकेद्वारा आकाश आदि पांच स्थूलभूतोंकी उत्पत्ति करतेहो एवं ज्ञानरूपसे सर्वव्यापकहो, इसलिये आप कारण ब्रह्महैं । हे आदित्य, आप प्राज्ञविशेष या पुरुषविशेष ईश्वर इसलियेहैं कि इस अवस्थामें सभी विशेषज्ञान आपमें घनीभूत होरहेहैं तथा आप शुद्धसत्वमयी इच्छावालेहो

और सर्वज्ञ आदि गुणोंकेद्वारा सर्वव्यापकहो—यही आपमें अन्य सभी जीवनामधारी पुरुषोंसे पुरुषविशेषताहै, अतः हे कारण-ब्रह्म प्राज्ञविशेष या पुरुषविशेष आदित्यदेव, आपको हमलोग, वन्दनाकरतेहैं।

सूत्रात्मा—हे आदित्यदेव, आपका हिरण्यगर्भ या सुवर्ण जैसा शरीरहै, इसमें सभी विशेषज्ञान प्रकाश पागएहैं या चमक उठेहैं। अहोजी, इसकी तो वेदोंमें महती महिमा वर्णन कीगईहै। जैसा-कि मंत्रहै—**हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥** हिरण्यगर्भही सबसे पहिले प्रकटहुए वह समस्त प्राणियोंके एकही पतिथे, और अबभीहैं। उन्होंनेही पृथिवी और द्यु लोक अर्थात् त्रिलोकीको धारण कर-रखाहै, उन्हीं एकदेवताकी हम, हवि आदिकेद्वारा पूजाकरतेहैं। आप इसी शरीर या रूपकेद्वारा सूत्रात्मा कहलातेहो। कारणकि आपके ज्ञानमें समस्तविश्व, धागेमें मणियोंके समान पिरोया हुआहै। आपके इसी रूपका तो अभिमान लेकर श्रीकृष्णजीने भगवद्गीतामें कहाहैकि—“**मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव**”—हे अर्जुन, मेरेमें यह सब संसार, धागेमें मणियोंके समान पिरोयाहुआहै। अतः हे सर्वश्रेष्ठ सूत्रात्मा अपरब्रह्म आदित्यदेव, आपको हम श्रद्धा भक्तिकेसाथ नमस्कार-

करतेहैं ।

वैश्वानर—हे आदित्यदेव, आप सूक्ष्मतमसे सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतरसे सूक्ष्महोकर आप अब बहुत बड़े रूपमें आगए । आपतो उपनिषदोंके पूर्वोक्त श्रुतिवाक्योंके अनुसार, आदित्य सविता या सूर्यरूपमें प्रकट होगए हैं । अहो, आपका यह कैसा तेजोमय रूपहै–जिसकी समतामें ऐसा आजतक कोई और रूप न तो हुआही है और न आगेको होगाही । हे भगवन्, आपने अपनेलिए यह कैसा चमचमाता हुआ सर्वश्रेष्ठ शरीर बनायाहै और हमारेलिये, रक्त मांस आदि के कुत्सित शरीर । आपमें यह पक्षपात कैसा और क्यों है । इस प्रश्नका उत्तर आगयाहै। ये हैं हमारे शुभाशुभ कर्मोंके परिणाम स्वरूप निकृष्ट शरीर,'अतः आपमें पक्षपात नहींहै । ऐसेतो आपका यह आदित्य या सविता शरीरहै, तोभी आप इसीके द्वारा पूजितहोतेहैं' इसके बिना तो आप इन्द्रिय अगोचरहोनेसे प्रायः अदृश्यही रहतेहैं, भला फिर आपकी कोई पूजा कैसे करने पाएगा। अहोजी, आपही क्यों, हमारी पूजा करनेवाले लोग भी तो हमारे इन स्थूलशरीरोंकेद्वाराही हमारी पूजा करतेहैं, नहीं तो हम भी पूजा करनेवाले और करानेवाले दोनों ही अदृश्य ही हैं । इसलिए हम आपके इस आदित्यरूपकोही अपना इष्टदेव मानेंगे और पूजा करेंगे ।

ऐसेतो आप"य एषोऽन्तरादित्ये"–इस पूर्वोक्त श्रुतिके अनुसार,

आदित्य मंडलके अन्तर्गत स्वर्णस्तम्भ तुल्य हिरण्यमय पुरुष योगियोंद्वारा देखेजातेहो और स्वर्ण समान तेजस्वी दाढ़ी मूंछ एवं केशसे युक्तहो तथा नखसेलेकर शिरःपर्यन्त सुवर्णके तुल्य भास्वर दिव्यकान्तिमानहो, तो भी आप सर्वसाधारणकेलिए आदृश्यहो हो, अतः आपका सूर्यरूपही सर्वोत्तमरूपहै। ऐसेतो आपभी सच्चिदानन्दहैं और हम भी सच्चिदानन्दहीहैं, तोभी आप शुद्धसत्वमय आदित्यस्थानीहोनेसे स्वामीहैं, और मलिनसात्विकी इच्छावाले एवं रक्त मांसके इन पिंडोंमें रहनेवाले हम आपके सेवकहैं। कहोजी, राजाभी तो एक मनुष्यहीहै और उसका द्वारपालभी मनुष्यही तोहै, तोभी राजा राजाहीहै और उसकी द्वारपाल आदि प्रजा प्रजा हीहै, किंतु वह राजा तो नहींहै। जिससेकि आप हमारे जाग्रत् अवस्थावाले विश्वनामके सभी नरोंके नेत्रोंको प्रकाश देरहेहै, इसीसे आप वैश्वानर कहेजातेहैं। अतः हे वैश्वानर आदित्यदेव, आपको हमारा सविनय नमस्कारहै।

सर्वज्ञ—हे आदित्यदेव, एक तो आप शुद्धसत्वगुणप्रधान इच्छावाले फिर आप विराजमानहुए प्रचंड प्रकाशमय तेजोमंडल आदित्यकेरूपमें, तबफिर आपकी सर्वज्ञताका ठिकानाही क्याहै। इसमें तो यदि कीड़ीकोभी बैठाया जाय तो वहभी सर्वज्ञा होसकतीहै तबफिर आपके विषयमें तो कहना ही क्याहै। इसीसे पतंजलीजीने, योगदर्शन समाधिपाद सूत्र २५ तत्र

निरतिशयं सर्वज्ञवीजम् । इसमें कहाहैकि ईश्वरमें सर्वज्ञताका बीज निरतिशय या निरपेक्ष होताहै । सातिशय वस्तु वह होती है जो किसीकी अपेक्षा छोटीहै । निरतिशय वस्तु वह है जो सबसे बड़ीहै । किसी मनुष्य को, अतीन्द्रिय पदार्थका थोड़ासा ज्ञान हुआ उसऋषीका जो वह ज्ञानहै वह सर्वज्ञताका बीज होगया । अन्य किसीको उससेभी अधिक अतीन्द्रिय वस्तुका ज्ञान हुआ- अब पहिलेका जो ज्ञानहै वह सातिशय होगया। तीसरे को उससेभी अधिक ज्ञान हुआ अब दूसरेका ज्ञान भी सातिशय या सापेक्ष होगया । इसप्रकारके सातिशय ज्ञानकी कहीं सीमा होनी चाहिये । जहां इस ज्ञानकी सीमाहै अर्थात् पूर्ण सर्वज्ञता है वही ईश्वरहै । यह सर्वज्ञताकाबीज जो मनुष्यमें या देवतामें सातिशयहै वह परमात्मामें जाकर निरतिशय या निरपेक्ष होताहै । जिससेकि आपही निरतिशयज्ञानसे सम्पन्नहैं । इसीसे आप सर्वज्ञ कहहेजातेहैं, अतः हे सर्वज्ञ आदित्यदेव, आपको हमारा नमस्कारहै ।

ॐ-हे आदित्यदेव, आपके इस ॐ नामकी महिमा तो वेदों शास्त्रों स्मृतियों पुराणों इतिहासों तथा मतमतान्तरोंमें प्रसिद्ध हीहै-तबफिर आपके इस ॐ नामकी अधिक प्रसंसा करनी ही क्या है । जिससेकि आप सबकी रक्षाकरनेवालेहैं--इसीसे आपका सर्वश्रेष्ठ नाम ओं है, अतः हे ओंकाररूपआदित्यदेव, आपको हमारा सनम्र नमस्कारहै ।

आदित्य- सवितः, आपके इस रूपको खंडन करनेवाला आजतक जन्माही कौनहै और न आगेकेलिए जन्मेगाही- जो आपके इस आदित्यरूपका खंडन करसकेगा । जिससेकि आप किसीसेभी खंडित नहींहैं-इसीसे आप आदित्य इस नामसे कहेजातेहैं । अहोजी, आपका यह आदित्यवार या ऐतवार या संडे दिन समस्त संसार व्यापीहै। केवल भाषाकाही भेदहै अर्थतो एकहीहै । यह तो आपके प्रकट होनेका सबसे प्रथम दिवसहै-इसीसे प्रत्येक ऐतवारको आपके सत्कारार्थ संपूर्ण संसारकेप्राणी अवकाश या छुट्टी करते हैं। ईसाई लोग, गिरजाघरोंमें आपकी प्रार्थना करतेहैं। प्रातः सायं दोनों समय पल्टनोंमें बिगल बजाकर आपको प्रणाम करते हैं। अतः इस दिन सबकोही अवकाश देना चाहिये। और कई आपके प्रेमी लोग, इस दिन व्रतकरके नमकनहीं खातेहैं, वह एकवार केवल मीठाही भोजनकरतेहैं । और कई आपके अनन्यप्रप्रेमीलोग, कई दिनोंतक वर्षाकी झड़ी लगजानेकेकारण, बिना आपके दर्शनकिए भोजन नहीं करतेहैं आपके प्रकट होनेकी दिशाका पूर्वदिशा या सबसे पहिली दिशा नाम पड़ा है-इसीसे बहुतसे समझदार लोग, इस दिशाको ओर पीठकर मलत्याग नहीं करतेहैं-और आपके सम्मुख होकर मूत्रत्याग नहीं करतेहैं-वे इससे आपका अपमान करना अनुभव करतेहैं। प्रातः सायं दोनों संध्याओंके समयमें लोग, आपके सम्मुख बैठकर आपकी उपासना करतेहैं।

इसलिये हे सर्वसमान्य आदित्यदेव, आपको हमारा सविनय नमस्कारहै ।

भगवान्—अहोजी, हे आदित्यदेव आपके इस नामकी महिमा तो उपनिषदोंमें बहुतही पाईगईहै । इनमें प्रत्येक ऋषिने अपने पूज्य पुरुषके लिए, " हे भगव" यह शब्द ही संबोधनके रूपमें उच्चारणकियाहै । जिससे कि केवल आपही समस्त ईश्वरता धर्म यश श्री ज्ञान और विज्ञानवालेहैं—इसीसे हे आदित्यदेव, आप भगवान् हो, अतः आपको हमारा नमस्कारहै ।

सविता—हे आदित्यदेव, जिससेकि आप सबकी उत्पत्ति करतेहैं इसीसे आपका नाम सविताहै, अतः हे वेदोंमें प्रसिद्ध सविता नामवाले आदित्यदेव, आपको हमारा प्रणामहै ।

सूर्य—हे आदित्यदेव, जिससेकि आप, अखिल प्रपंचके नियामक हो--इसीसे आपका नाम सूर्यहै, अतः हे सूर्य नामवाले आदित्य-देव, आपको हम बहुधा नमस्कारकरतेहैं ।

परमदयालु – हे आदित्यदेव, आपसे भिन्न जितनेभी प्राणी दयालुहैं वे सबके सब सापेक्ष दयालुहैं—वे कुछ न कुछ मनमें कामना रखकरही किसीपर दया करतेहैं, अतः वे सापेक्ष दयालु-हैं । परन्तु आपतो किसीसे दया उधारी न लेकर सबपरही दया करतेहैं, अतः आप निरपेक्ष दयालुहोनेसे परमदयालुहैं । अतः हे परमदयालु आदित्यदेव, आपको हमारा प्रणामहै ।

न्यायकारी—हे आदित्यदेव, आप सबपरही एकसी दृष्टि रखतेहो,

कोई जैसाभी शुभाशुभ कर्म करताहै—उसको वैसाही उस कर्म के अनुरूप सुख या दुःख देकर उस कर्मसे मुक्त करदेतेहो उसमें आपका कुछभी किसीसे पक्षपात नहींहै। परन्तु भक्त या भले मनुष्यका थोड़ासाभी कियाहुआ पुण्य या भला कर्म-उससे आप प्रसन्न होकर भक्तको बहुत बड़ा सुखफल देसकतेहो। अहोजी, आपके यहां कमी किस वस्तुकीहै। आपतो पूर्णकाम आत्मारामहो तबफिर आपके कोशमें न्यूनता क्योंहो, आप कृपणता क्यों करनेलगे। अहोजी, जब एक साधारणमनुष्यभी अपने सभी कर्मचारियोंमेंसे किसी एक नेकनीतिसे काम करने वाले व्यक्ति पर प्रसन्नहोकर उसे अपनी जेबसे इनाम देदेताहै, उसे कोईभी समझदार व्यक्ति पक्षपाती नहीं कहेगा, तबफिर आपतो परमस्वतन्त्रहोनेसे थोड़ेसे कर्मसे जिसको जो चाहो बड़ा सुखफल देसकतेहो। इसमें पक्षपात क्याहै। आपकी न्याय-कारितामें कलंक क्यों लगाया जाए। किसीपर अन्याय करना-ही तो बुराहै। किसीको नीचसे उच्च बनादेना बुरा नहींहै। यदि आपके परमप्रेमी तथा लोकोपकारी सेवकसे अकस्मात् कोई पाप कर्मभी होजाए और वह उस पापकर्मसे भयभीतहोकर पश्चा-ताप करताहुआ तथा आगेको दुष्टकर्म न करनेकी मनमें प्रतिज्ञा करताहुआ आपसे क्षमा याचना करताहै—तो हे विश्वात्मन्, आप उसे क्षमा प्रदानकरतेहैं। अपने भक्तने अपने उस अशुभकर्मसे जिन लोगोंको हानि पहुंचाईहै, आप उनलोगोंको भी अपनी

ओरसे हर्जाना देकर प्रसन्न करसकतेहो। जबकि एक साधारण व्यक्तिभी किसीको हर्जाना देकर अपने आदमीकी रक्षाकरलेता-है-तब फिर अनन्तशक्ति संपन्न भगवान् होकर आपकेलिये असम्भवही क्या है। इसप्रकार आपकी परमदयालुता और न्याय-कारितामें कुछभी विरोध नहींहै। अतः हे परमदयालु तथा न्यायकारी आदित्यदेव, आपको हमारा शतशः प्रणामहो।

कर्म तथा उपासना

हे आदित्यदेव, मनुष्य अग्निहोत्र आदि कर्मकेद्वारा आपको प्रसन्न करके अपनी कामनाके अनुसार, आपसे धर्मअर्थ काम तथा ज्ञान या इनमेंसे किसी एक फलको प्राप्त करलेताहै। अहोजी, प्रातः-सायं दोनों समयोंकी सन्धिमें होनेवाली यह संध्योपासना आपकी-ही प्रसन्नता संपादनकरनेकेलिए कीजातीहै। जिसके न करनेसे अन्य किसीभी देवताकी पूजाकरनेपर द्विजातिको स्मृतियोंमें पतित बतायागयाहै। यह संध्या आपकेही सम्मुख बैठकर की-जातीहै, इसमें सबही मंत्र वास्तवमें आपकीही स्तुतिकेलिये दिएगएहैं। अतः हे सर्वसंमान्य आदित्यदेव, आपको हमारा श्रद्धापूर्वक नमस्कारहै।

हे आदित्यदेव, गायत्रीमंत्र, सर्ववेदोंमें स्मृतियों और पुराणोंमें भी उच्च कोटिका मंत्र मानागयाहै—यह सर्वश्रेष्ठमंत्र, यज्ञोप-वीत धारण करनेके समय आचार्यकेद्वारा मनुष्यको द्विजाति

बनानेकेलिए दियाजाताहै। इस मंत्रके बिना मनुष्य द्विजाति कहलानेका अधिकारी नहींहै। इस मंत्रके प्रतिपाद्यदेवता आपही हो। आज इस मंत्रको सूते इति सबिता—जो उत्पत्तिकरे वह सबिताहै—ऐसी व्युत्पत्तिको लेकर बहुतसे संप्रदायीलोगोंने, अपने-अपने इष्टदेव पर लगालियाहै—वे इस मंत्रकेद्वारा अपने २ इष्ट-देवको सबिता मांनकर उसे अपना अराध्यदेव मान रहेहैं। यह तो अपनी श्रद्धापर निर्भरहै इस मंत्रको जहांपर चाहो गुरु आदि-परभी लगासकतेहैं। परन्तु ऐसा करना वेदके विपरीतहै। क्यों-कि यजुर्वेदने तो सबिता नाम सूर्यदेवका ही बतायाहै। मंत्रहै—

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्यमयेन सविता देवो रथेनायाति भुवनानि पश्यन्॥

आवरणरूप रात्रिके साथ वर्तताहुआ अर्थात् अंधेरेको नष्टकरताहुआ तथा देवताओं और मनुष्योंको अपने २ कर्ममें लगाताहुआ एवं संपूर्ण भुवनोंको देखताहुआ सबितादेव सुवर्णके समान वर्णवाले रथमें बैठकर आताहै। जबकि वैदिक मन्त्रोंसे इसप्रकार सावितादेवकी स्तुति सूर्यके रूपमें की गईहैं—तबफिर गायत्रीमंत्रके द्वारा सूर्पदेवसे भिन्न किसी अन्यदेवका सविता नामसे ग्रहण करना उचित नहींहै।

मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक —

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमर्कदर्शनात्
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्ष विभावनात् ।१०१।
पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवा कृतम् ।१०२
न तिष्ठति यःपूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ।१०३।
अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः ।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ।१०४।

प्रातःकालकी संध्यामें सूर्यके दर्शन होनेतक खड़ाहोकर सावित्री नाम गायत्रीका जपकरे, और सायंकालकी संध्यामें तारे दीखनेलगें तबतक बैठकर जपकरनाचाहिए ॥१०१॥ प्रातःकालकी संध्यामें जपकरताहुआ मनुष्य, रात्रिके पापको दूरकरदेताहै और सायंकाल संध्या करनेसे दिनमें किएहुए पापको नष्टकर-देताहै ॥१०२॥ जो मनुष्य, प्रातःकाल संध्योपासना नहीं करताहै तथा सायंकाल संध्या और गायत्रीका जप नहीं करताहै उसे द्विजाति सत्कार, आदि संपूर्ण कर्मसे शूद्रके समान, पंक्तिसे बाहर निकालदेनाचाहिए ॥१०३॥ (परन्तु इसके विपरीत अबतो गायत्रीसंध्या करनेवाले व्यक्तिकोहो भक्तमंडलीसे बाहर किया जारहाहै, क्योंकि इन भक्तोंकी संख्या अब अधिकहै । अस्तु)

बनमें जाकर अर्थात् एकान्तमें जाकर समाधानहो, नदी आदि जलके समीपमें जितेन्द्रियहोकर नित्यकर्म विधिमें स्थितहुआ सावित्री अर्थात् गायत्रीका जपकरे ॥१०४॥ इसके आगे नैत्यके इस १०५ श्लोकमें यह बतायागयाहै कि नित्यकर्ममें अनध्याय अर्थात् छुट्टी नहीं करनीचाहिए, क्योंकि यह ब्रह्मयज्ञहै इससे सदाही पुण्य होताहै, और अनध्यायमें तो हवन करनेसेही पुण्य होताहै। मनुके इत्यादि श्लोकोंसे निसन्देह यह सिद्ध होताहै कि गायत्री मन्त्रसे उपास्य सविता या सूर्यदेवही हैं। इसीसे गायत्रीका दूसरानाम सवितासे संबंधहोनेसे सावित्रीनाम पड़ा है। परन्तु आज- दूसरे देवी देवताओं की उपासना होरहीहै-इससे लोग, दोनों संध्याओंमें प्रायः उन्हींका पूजन करने लगेहैं। इसीसे वैदिक संध्या गायत्री आदि कर्म और जपका करना त्यागदिया- है। न जाने एक महापुरुषभी, इन श्लोकोंके तात्पर्य अर्थको क्यों भूल गए। उन्होंने क्यों न विचार किया कि गायत्रीका सावित्री नाम कैसे होगया। इसका यदि सविता या सूर्यदेवताहै तबही तो इसका सावित्री नाम हुआहै अहो, वे बहुत बड़ी भूलकरगए- हैं। उनका अनन्यभक्तभी उनका अनुयायी होताहुआ अब उनके विरुद्ध कैसे और क्यों जाएगा। अस्तु। गायत्री मन्त्र—

ॐभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्—पदार्थ— ऊं=रक्षा

करनेवाला, भूः=सत्तारूप, भुवः=चित्‌रूप, स्वः=सुखरूप, तत्=वह, सवितु=उत्पत्तिकरनेवाला, वरेण्यं=चाहनेयोग्य, भर्गः=पापोंका नाशक तेज, देवस्य=प्रकाशस्वरूप, धीमहि=ध्यानकरतेहैं, धियः=बुद्धियोंको, यः=जो नः=हमारी, प्रचोदयात्=प्रेरणा करे। भावार्थ—हम, उत्पत्तिकरनेवाले, चाहनेयोग्य, स्वयंप्रकाश, रक्षाकरनेवाले, सच्चिदानन्दके उस पापोंके नाशकरनेवाले, तेजका ध्यानकरतेहैं, वह हमारी बुद्धियोंको शुभकर्ममें प्रेरणा करे। हे आदित्यदेव, यह गायत्रीमंत्र आपकी स्तुतिकेलिए सर्वोत्तम मंत्रहै। इसकी साक्षी भगवान् कृष्णजी गीता अध्याय दशमें **"गायत्री छन्दसामहम्"** छन्दोंमें गायत्री नामक छन्द मैंहु ऐसा कहकर देरहेहैं। मनु आदि स्मृतियोंमें, इस गायत्रीमंत्रका बहुत महत्व प्रतिपादन कियागयाहै। अतः हे सविता आदित्यदेव, इस मंत्रकेद्वारा 'हम' आपका सदाही स्मरणकरतेरहें।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव। हे सवितः सूर्यदेव, हमारे समस्त पापोंको दूरकीजिए और जो शुभहै वह हमें प्रदानकीजिए। यह मंत्रभी आपकी प्रार्थनाकेलिए प्रसिद्ध मंत्रहै। अतः इसकेद्वारा हमलोग, आपकी प्रार्थना करतेहैं। इस पुस्तकके मंगलाचरणमें लिखा हुआ श्वेताश्वतर उप० का "यो ब्रह्माणं" यहमंत्र, मुमुक्षुओंको आपकी स्तुति करनेकेलिए अतिश्रेष्ठ मंत्रहै।

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः। यह मंत्र कठ० तैतरीय० तथा बृहदा० उप० में भी आयाहै। इसका अर्थहैकि ब्रह्मकी भयसे अग्नि तपताहै, सूर्य तपताहैं तथा इन्द्र और मृत्युभी अपना २ काम करतेहैं, इस मंत्रसे यह संदेह होताहैकि सूर्यसे भिन्न सूर्यको भय देनेवाला परमात्मा, सूर्यसे बहुत दूर कहींपर रहता होगा, परन्तु ऐसा नहींहै और इसको भयभी नहींहै। कारण कि हमलोगोंके रक्तमांस अस्थियोंसे संचित शरीर, बात कफ और पित्तसे व्याप्तहुए सविकारहैं। और ये किसी बात आदि दोषके कुपित होजानेपर निकम्मे होजातेहैं। तबतो इनको चाहे कितनाभी भय दिखलाया जाय फिरभी ये कुछ काम करनेको तैयार नहीं होते। परन्तु हे अदित्यदेव, आपका यह प्रबलप्रचंड तेजोमयकल्याणतमनिर्विकार आदित्यशरीर, किसीभी विकार-वाला नहींहै, अतः यह आपकी आज्ञाको उल्लंघन क्यों करेगा, यह तो जैसाभी आप चाहोगे वैसाही काम करेगा, फिर इसको भय क्यों होवेगा। अतः आपका यह आदित्यशरीर, सदाही निर्भयहै और आगे रहेगा। यह श्रुतिवाक्य, केवल स्थान और स्थानीके भेदका द्योतकहै। हे आदित्यात्मब्रह्मदेव, उपनिषदोंमें बहुत स्थलोंपर आपकी प्राणरूपसे उपासना करने का विधानहै, वहभी श्रेष्ठहै। मनुष्य चाहे उसेही करता रहे। छान्दोग्य० के आठवें अध्यायमें आपकी दहर उपासनाका बिधानहै, उसके

अनुसार मनुष्य, अपने हृदयदेशमें ब्रह्मरूप आपका ध्यानकरे वहभी आपकीही उपासना या भक्ति होगी, क्योंकि उसकेद्वारा प्राप्यब्रह्म आपहीहैं ।

छान्दोग्य० अ० ४ खंड ११श्रुति १, य एषः आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोहमस्मि स एवाहमस्मि—— जो यह आदित्यमें हिरण्यश्मश्रु पुरुष योगियोंद्वारा देखाजाताहै, वही मैं हुँ वही मैं हुं, इस श्रुतिके अनुसार उसे अपनाही स्वरूप समझना चाहिए । देखोजी, भक्तजी, भय मतकरो । "अहंब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्महुँ ऐसा कहनेसे अपनेमें पाप आजानेकी आशंका न करो। भगवान् बड़े उदार हैं, वे इस अभेद उपासनासे आपको अपने ब्रह्मलोकमें ले जाएंगे, जबकि भगवान् अपनी वाणीसे तुमें ऐसी अभेद उपासना करनेकेलिए बतारहेहैं-—तबतो आप निर्भय-होकर "सोहमस्मि" में ब्रह्म हूँ ऐसे रटाकरो । आदित्यात्मदेवकी यह अभेद उपासना बहुतही श्रेष्ठहै ।

हे आदित्यात्म ब्रह्मदेव , ओंकारके——द्वारा आपकी उपासना करनेका वेदों शास्त्रों स्मृतियों पुराणों एवं मतमतान्तरोंमें भी बहुत बड़ा महत्व गान कियागयाहै । आप सबके रक्षकहैं-इसीसे आपका नाम ओं है ।इस ओं का नाम प्रणव भी है । "प्रकर्षेण नौति स्तौति इति प्रणवः" सबसे बढ़कर स्तुति करनेवालेका नाम प्रणवहै । इसीसे श्रीगीताजीके अ० दशमें कृष्णजीने

कहाहै कि "प्रणवः सर्ववेदेषु" समग्र वेदोंमें प्रणव मैं हूँ। इसप्रकार ओंके महत्वमें श्रीकृष्णजीकी साक्षीहै। देखोजी, वरसे बिना बरात किसकामकीहै। यदि वेदोंमें ओं न होता तो वेदभी किस कामके होते। इसीसे तो वेदके प्रत्येक मन्त्रके साथ ओं लगाया जाताहै। वेदादिमें ओंका सबसे बड़ा महत्त्व अनुभवकरकेही पतंजली महाराजने अपने योगदर्शनमें साधकको, शीघ्रतम समाधिके लाभार्थ ईश्वरभक्तिकेलिए अन्य सभी मंत्रोंको त्याग करके केवल प्रणव मन्त्र जपनेकेलिए सूत्र दियाहै—समाधिपाद सूत्र २७ "तस्य वाचकः प्रणव":—उस ईश्वरका वाचक या नाम प्रणव अर्थात् ओंहै। व्यासभाष्यमें लिखाहै कि इस नामके साथ परमात्मा का नित्य संबन्धहै अर्थात् सर्ग सर्गान्तरोंमें यही नाम उसका स्थिर रहताहै। सूत्र २८ केद्वारा ईश्वर प्रणिधान कहाहै। सूत्रहै—"तज्जपस्तदर्थ भावनम्"--- उस ओंका जप और उसके अर्थ ईश्वरका चिन्तनकरनाचाहिए। इससे शीघ्रतम समाधि प्राप्त होगी, इसप्रकार योगदर्शनमें ओंका महत्त्व प्रतिपादन कियागयाहै। उपनिषदोंमें इसकी प्रतीकरूपसेभी उपासना करनेका विधानहैकि ओंको ब्रह्मका प्रतिनिधि मानकर इसमें ब्रह्मभावनाकरके इस ओंकी उपासनाकरे, जैसाकि तैतरीय उप० में "ओमितिब्रह्म" ओं यह ब्रह्महै, ऐसी श्रुतिहै।

या फिर मनुष्य, मांडूक्य उप० के अनुसार ओं अक्षरकी अकार उकार और मकाररूपी तीनमात्राओंके साथ आत्माके विश्व तैजस और प्राज्ञरूप अध्यात्म तीनपादोंको तथा ब्रह्मके वैश्वानर सूत्रात्मा—अपरब्रह्म और सर्वेश्वर-अन्तर्यामीरूप अधिदैव तीनपादों-को मिलाकर ओंकेद्वारा आदित्यात्मब्रह्मदेवरूप आपको ओंकार-ब्रह्म मैं हुँ ऐसी अभेद उपासनाकरे। आपकी यह उपासनाभी अतिश्रेयस्करीहै।

हे ब्रह्मात्मदेव आदित्य, कोईभी मनुष्य किसीभी भाषामें तथा किसीभी मंत्रसे और किसीभी नामकेद्वारा आपकी भक्ति करेगा-उसे मन चाहा फल मिलजाएगा। परन्तु आपके रूपमें भेद नहीं करना चाहिए। यदि नामोंकी भान्ति आपके रूपमेंभी भेद करेगा- तबतो उसे कुछभी फल नहीं मिलेगा। देखोजी, जल कहो वाटर कहो और आब कहिए एकही तो बातहै। ये अनेकों नाम जलकेहीहैं। आप यदि नामके साथसाथ उसके रूपकाभी भेद करते जायेंगे तबतो आप लोगोंकी प्यास निवृत्त नहीं होवेगी। क्योंकि रूपका भेद करनेपर आप पागल कहेजा-ओगे। इसीप्रकार आदित्यात्माके नाम भेदकेद्वारा उसके रूपका भेद नहीं करनाचाहिए। ऐसाकरनेपर आप फलसे वंचित रह—जाओगे। संप्रदायीलोगोंने इस समय अज्ञानतासे आदित्यात्मा—ब्रह्मकी समतामें अनेकोंही रूपों और स्थानोंकी कल्पना करली-है। इसीलिए मैं आप लोगोंको सावधान कररहाहुं, देखना कहीं

उनके वशीभूत न होजाना।

परब्रह्म और अपरब्रह्मके विषयमें प्रमाण-

कठ उप० अध्याय १ बल्ली २ मंत्र १५—१६—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ।१५।

यही ओं अक्षर अपरब्रह्महै और यही ओं अक्षर परब्रह्महै, इसी ओं अक्षरको जानकर जो इच्छाकरताहै—उसे वही प्राप्त-होजाताहै । तात्पर्य यह है कि ओं अक्षरही अपरब्रह्मका नाम-है, इसलिए मनुष्य अपने अधिकारके अनुसार इस ओं अक्षर-केद्वारा अपरब्रह्मको प्राप्त करसकताहै और परब्रह्मको जान-सकताहै । माया सहितका नाम अपरब्रह्महै और माया रहितका नाम परब्रह्महै ।

एतदालम्वनं श्रेष्ठमेतदालंवनं परम् ।
एतदालंवनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥१६॥

इस ओंका आश्रय करना श्रेष्ठहै, यही आश्रय परहै, इसी आलम्बनको जानकर ब्रह्मलोकमें पूज्य होताहै। तात्पर्य यहकि मनुष्यको इस ओंकेद्वारा अपरब्रह्मका आश्रय करना उत्तमहै, और इसी ओंकेद्वारा परब्रह्मका आश्रय करना उत्तमहै। इस ओंकेद्वारा परब्रह्मको जानकर मुक्त होजाताहै, और इसी ओंके द्वारा अपरब्रह्मके ध्यानसे ब्रह्मलोकको प्राप्त करलेताहै ।

प्रश्नोपनिषद् प्रश्न ५—"एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति। हे सत्यकाम, यह जो ओंकारहै यह परब्रह्म और अपरब्रह्मरूपहै अर्थात् इन दोनोंका नामहै, इसलिये विद्वान्, इसी ओंकारके आलम्बनद्वारा दोनोंमेंसे किसी एकको ग्रहणकरताहै। इससे आगे श्रुति कहतीहै कि यदि मनुष्य तीनमात्राओंरूप ओंकार-केद्वारा अपरब्रह्मका ध्यान करताहै-वह सब पापोंसे रहितहुआ सूर्यको प्राप्तहोकर ब्रह्मलोकमें पहुंचजाताहै। उसके पीछे उस जीवोंके घनीभूत परसे अर्थात् अपरब्रह्मसे परब्रह्मको साक्षात करताहै, वह परब्रह्म, शान्त अजर अमर और भयसे रहितहै। तात्पर्य यहहैकिब्रह्मलोकमें, जीवोंके स्थूलशरीर नहीं जाते। अतः वे वहां अदृश्य होकर रहतेहैं, इसीसे ब्रह्मलोक जीवोंका समूह-रूपहोनेसे जीवघन कहलाताहै। वहां महाप्रलय आजानेपर उसके स्वामी अपरब्रह्मसे—जोकि समस्त प्राणधारियोंकी अपेक्षा उपास्य और प्राप्यहोनेसे परब्रह्महै—उससे ज्ञान प्राप्तकरके सबके सब, इच्छारहित शुद्ध स्वस्वरूप सामान्य सच्चिदानन्द निरपेक्ष निर्गुण परब्रह्मको प्राप्तहोजातेहैं। इसीको उपनिषदोंमें, क्रममुक्ति कहा-गयाहै। इसप्रकार उपनिषदोंमें सत्यज्ञानानन्दस्वरूपकी अपरब्रह्म और परब्रह्मके नामसे उपासना पाईजातीहै, और अपरब्रह्मका, ब्रह्मलोकके नामसे लोक पायाजाताहै। ऐसेतो परब्रह्मकीभी

अमात्र ओंकारकेद्वारा उपासना करनी कठ प्रश्न और मांडूक्य आदि उपनिषदोंमें पाईजातीहै, तोभी वह उपासना केवल मुमुक्षु मनुष्योंके लिएहीहै । अपरब्रह्मकी उपासना तो धर्म अर्थ काम और ज्ञानकेद्वारा मोक्षकी देनेवालीहोनेसे सर्वसाधारणकेलिएही इसका उपयोगहै ।

अपौरुषेय अर्थात् किसी पुरुषकेद्वारा रचित न होनेसे वेदही सनातनहै, अतः इसके और इसके अनुसारी धर्मग्रंथोंके मानने-वाला मनुष्य सनातनधर्मी कहलासकताहै । सनातनधर्मी मनुष्य-ही आर्य होसकताहै । सिंधुनदके निवासीहोनेकेकारण कुछ दिनों-से हमारा नाम हिन्दूभी पड़ गयाहै । इसलिए सनातनधर्मी आर्य-हिंदुलोगोंको, मंत्रवेदों तथा मंत्रब्राह्मणात्मक वेदोंके अनुसार आदित्यब्रह्मकाही प्रातः सायं दोनों संध्याओंमें संध्या तथा गायत्री आदि मंत्रोंकेद्वारा जपकरतेहुए जल पुष्प धूप दीप नैवेद्य-के साथ पूजा स्तुति और ध्यानकरनाचाहिए । अन्य समयमें मानसीपूजा और उसका ध्यान करनाचाहिए । कारणकि सृष्टि-कालमें, शुद्धसत्वगुणप्रधानमायासहित आदित्यनिवासी सच्चि-दानन्दही अपरब्रह्महोनेसे आदित्यरूपसे उपास्य या उपासना-करनेकेयोग्यब्रह्महै । जिससे कि ऊपरवाला जाने, इसप्रकारकी परम्परासे चली आई हुई यह लोकोक्तिभी सत्यहीहै, इससेभी आदित्यनिवासी अपरब्रह्मही उपास्यब्रह्महै ।

इसप्रकार वैदिकब्रह्म विचारमें उपास्यब्रह्म नामका तीसरा प्रकरण समाप्तहुआ ।

४ प्राप्यब्रह्म

उपास्यब्रह्महीं प्राप्यब्रह्म या प्राप्तकरनेके योग्यब्रह्महै ।

जिस मनुष्यने इसलोक और स्वर्गलोकके भोगोंसे विरक्तहोकर अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि साधनोंसे संपन्नहो, ब्रह्मलोकके सुखोंकी कामनासे अपरब्रह्मकी, उपास्यब्रह्म प्रकरणमें कहीगई रीतिसे अभेद बुद्धिसे उपासनाकीहै—उसको प्राणान्तके समय ईशावास्य उपनिषदके इन मंत्रोंद्वारा सूर्यदेवसे प्रार्थना करनीचाहिए—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥१५॥

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योसा-
वसौ पुरुषः सोहमस्मि ॥१६॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
ओं क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर ॥१७॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव
वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं
विधेम ॥१८॥

हे जगत्पालक सूर्य, आपके इस हिरण्यमय या सुवर्णके समान देदीप्यमान प्रचंड तेजरूपी पात्रसे सत्यात्माका द्वार ढकाहुआहै-उस तेजरूप ढकनेको आप हटालीजिए-ऐसा होनेपर मैं उस आराध्यदेव ब्रह्मात्माके दर्शनकरूंगा ।॥१५॥ हे जगत्पोषक आदित्य, हे अकेले चलनेवाले, हे प्रेरक, हे विद्वानोंके लक्ष्यरूप सूर्य, हे प्रजापतिके प्रिय, अपनी किरणोंको एकत्रकरो और प्रचंड तेजको समेटलीजिए आपके अन्दर जो योगियोंद्वारा दीखने-वाला अत्यन्त कल्याणतमरूप पुरुषहै-उसे मैंदेखरहाहूँ और देखूंगा; वही पुरुष परमात्मा मैं हूँ अर्थात् मैं उसकी अभेद बुद्धि-से उपासना करनेवालाहूँ, शुद्ध सत्वगुणप्रधान होकर उसके अत्यन्त समीपमेंहूँ, अतः अब उसमें और मेरेमें कुछ भेद नहींहै ॥१६॥ यह मेरा प्राणवायु व्यापकवायुमें मिल जाए और इससे रहितहुआ स्थूलशरीर अग्निमें भस्महोजाए, हे ओंकारा-भिन्नसच्चिदानन्द आदित्यदेव, हे यज्ञमय भगवान्, आप मुझ भक्तको स्मरणकरें और मेरेद्वारा किएगए कर्मोंका स्मरणकरें ॥१७॥ हे सूर्य, जिससेकि आप समस्त पदार्थोंको जाननेवालेहो, अतः हे देव, हमें सर्वश्रेष्ठ उत्तरायणमार्गसे लेचलो, मैं ब्रह्मलोक-में अपनी उपासनाका शुभफल भोगूंगा, और जो कुछ शेष

रहगयेहों—उन कुटिलपापोंको हमारेसे आप दूरकरदीजिए, हम आपको नमस्कार बचनसे बहुतही परिचर्या या सेवाकरतेहैं ॥१८॥ छान्दोग्य अध्याय ४ खंड १५ "अथ चैवास्मिन्छव्यं कुर्वन्ति यदि च नार्चिषमेवाभिसंभवन्ति" इत्यादि श्रुतियोंसे ऐसे उपासककी मृत्यु होजानेपर उसका कोई मृतककर्म करे या न करे देखोजी, उसे तो जो कुछ करनाचाहिएथा वह सब अपने आपही करचुकाहै—उसे अब पुत्र आदिकेद्वारा किएहुए किसी कर्मकी आवश्यकताही क्या है। अतः उसकेलिए यदि कोई पुत्र आदि कर्म करताहै तो उस कर्मसे उसे कुछ लाभ नहींहै। उसकेलिए यदि कुछभी कर्म न कियाजाए तो इससे उसकी कुछ हानि नहींहै। इसलिए उसके मार्गमें कोईभी कुछ रुकावट नहीं करेगा। वह तो सूर्यकी रश्मियोंको प्राप्त होजाएगा, वहांसे दिन शुक्लपक्ष उत्तरायण संवत्सर आदित्य चन्द्रमा बिजली और अमानव पुरुषकेद्वारा ब्रह्मलोकमें पहुंच जायेगा। यही देवमार्ग और ब्रह्ममार्गहै—इस मार्गसे गयाहुआ उपासक इस मनुके संसारमें नहीं आवेगा। यह श्रुतियोंका भावार्थहै। तात्पर्य यहहै कि ब्रह्मसूत्रमें चौथे अध्यायके तीसरे पादका यह सूत्रहै—"अतिबाहकास्तल्लिंगात्" ॥४॥ इस सूत्रके अनुसार, अर्चि दिन शुक्लपक्ष और उत्तरायण इत्यादि नामवाले ब्रह्मलोकको लेजानेवाले ये चेतनदेवताही सिद्धहोतेहैं। इसप्रकार ये

दिन पक्ष और उत्तरायण नामके काल या समय नहींहै और चान्द्र आदि नामवाले लोकभी नहीं हैं, ये तो देवताहैं । इस-लिये दिन रात कृष्णपक्ष शुक्लपक्ष दक्षिणायन और उत्तरायण आदि किसीभी समयमें जबभी उपासक प्राणोंको त्यागेगा ये देवता उसे ब्रह्मलोकमें ले जावेंगे । यदि, दिन आदिके समयमें मरनेसेही कल्याणहै तबतो कसाईभी दिनमें और उत्तरायणमें मरतेही हैं वे भी ब्रह्मलोकमें चलेजावेंगे और भक्त जनभी रातको कृष्णपक्ष और दक्षिणायनमें प्राण त्यागतेहैं– इससे वे ब्रह्मलोकमें नहीं जानेचाहिए। इसलिए यहां कालका ग्रहण नही करनाचाहिए । क्योंकि ब्रह्मसूत्रमें अ० ४ पाद २ सूत्र २१ **योगिनः प्रति च स्मर्यते स्मार्ते चैते**" इस सूत्रमें कालका खंडन किया है । इसमें कहाहै कि गीता स्मृतिके अ० ८ श्लोक २३ में "तं कालं" यह काल बचन योगियोंके विषयमें कहागयाहै । अतः यह श्रुतिमूलक नहींहै । इसलिए श्रुतिके विरुद्ध स्मृति प्रमाण नहींहै । इससूत्रकेशांकरभाष्यमें यह कहाहै कि यदि गीताभी इनको अतिवाहक चेतनदेवताही मानतीहै तो श्रुतिसे गीता स्मृतिका कुछभी विरोध नहींहै। इसलिए दिन आदिसे काल या समयका ग्रहण नहीं करनाचाहिए । अस्तु । ये चेतन देवता उपासकको सत्कार पूर्वक जहां तहांपर सैर कराते-हुए और एक दूसरेके पास पहुँचातेहुए विस्तृत सूर्यमंडल ब्रह्मके

लोकमें पहुंचादेतेहैं ।

छान्दोग्य अ० ८ खंड ६ श्रुति ५ " अथ यत्रैतदस्माच्छरीरात्" इत्यादि श्रुतियोंसे जबकि यह उपासक,इस शरीरसे उत्क्रमण करताहै उसी समय इन सूर्यकी रश्मियों या किरणोंद्वाराही ऊपरको लेजायाजाताहै। वह ओं ऐसा उच्चारण करताहै। जैसे मन क्षण भरमें (बंबई कलकत्तामें) पहुँच जाताहै—वह इसीप्रकार सूर्यको प्राप्तहोजाताहै—यह ब्रह्मलोकका सूर्यरूपी द्वार उपासकोंकेलिये खुलाहै, ये ही इसमेंसे होकर ब्रह्मको प्राप्तहोसकतेहैं, अज्ञानी कर्मठोंकेलिए यह सूर्यद्वार निरुद्ध या बन्दहै। हृदयकी एकसौ नाड़ियोंमेंसे एक नाड़ी मस्तकको भेदनकरके निकलतीहै उसकेद्वारा ब्रह्मलोकको जाताहै, औरोंसे नहीं। यह श्रुतियोंका अर्थहै। देखोजी, समझ बूझकर उपासना करनीचाहिए, इस सूर्य मार्गसे उच्चसेभी उच्च देवी देवताओंके उपासक नहीं जासकेंगे, इस मार्गसे तो केवल आदित्यकी ब्रह्मरूपसे उपासना करनेवाले लोगही जासकतेहैं। छान्दोग्य० अ० ८ खंड ६ की "अथ या एता"—इत्यादि श्रुतियोंसे हृदयकी ये पिंगला आदि नामवाली नाड़ियां सूर्यसे सम्बन्ध रखतीहैं, अतः इनकेद्वाराही ब्रह्मलोकमें जानाहोताहै। ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद २ सूत्र १९

"निशि नेति चेन्न संबन्धस्य यावद्देहभावित्वाद्दर्शयति च"—इससे जबतक शरीरहै तबतक सूर्यकी रश्मियोंका

इससे सम्बन्धहै। अतः उपासक रातमेंभी शरीर त्यागनेपर सूर्यकी किरणोंकेहीद्वारा ब्रह्मलोकको लेजायाजाताहै। "अतश्चायनेपि दक्षिणे"–इस २० वें सूत्रके अनुसार दक्षिणायनमेंभी प्राणत्यागनेपर वह ब्रह्मलोकमेंही जाताहै।

छान्दोग्य० अ० ८ खण्ड ३ "अथ ये चास्येह"–इत्यादि श्रुतियोंसे ऐसेतो यह इन जीवित जीवोंको और मृत्युको प्राप्त-हुए जिन माता पिता आदि लोगोंको जाग्रत और स्वप्न अवस्थामें इच्छा करनेपरभी नहीं मिलसकता, इन सबको (हृदया-काशस्थित) ब्रह्मलोकको प्राप्तहोकर मिलसकताहै। तोभी जैसा-कि लोग, गृहमेंही उपस्थित निधिको उसी गृहमें उस निधिके ऊपर भ्रमण करतेहुएभी अज्ञानतासे उसनिधिको प्राप्त नही कर-सकते–उसीप्रकार ये सभी जीव नित्य प्रति सुषुप्ति अवस्थामें ब्रह्म-को प्राप्तहोकरभी पुण्य पापरूपी अनृत साथमें होनेसे ब्रह्मको नहीं जानसकते। इसी अनृत या झूठकेद्वारा ये वहां टिक नहीं सकते, वहांसे लौट आतेहैं। ऐसेतो समाधिकेद्वाराभी अपने हृदयाकाशमें ब्रह्मलोकका अनुभव करसकतेहैं, तोभी वहां चिरकाल तक टिक नहीं सकते। परन्तु सूर्यकेद्वाराही ब्रह्मलोकमें प्रविष्टहोकर स्थिर-तापूर्वक निवास करसकतेहैं। क्योंकि वहां इनके साथ, अनेक रोगोंके आगार स्थूलशरीरोंका संम्बन्ध नहींहै। खंड ५ "अथ-यद्यज्ञः"–इत्यादि श्रुतियोंसे पूर्णब्रह्मचर्यकेद्वाराही वह ब्रह्मलोक

प्राप्त किया जासकताहै ।

ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद ४ सूत्र ९ "अत एव च अनन्याधिपति"-इस सूत्रसे, वहां किसीकी दासता नहीं करनी पड़ेगी। देखोजो, यदि ब्रह्मलोकमेंभी पहुँचकर किसीकी दासताहै तो वह ब्रह्मलोकभी सर्वोत्तमलोक क्यों कहाजायेगा,. अतः विद्वान् वहां सत्यसंकल्प आदि ऐश्वर्यमें स्वतन्त्रहै । अतः वहां किसीकी दासता नहींहै । वहांपर ब्रह्मकोभी प्रातः सायं प्रणाम नहीं करनापड़ेगा । क्योंकि वहां दिन और रात नहींहै, वहतो "सकृत प्रभात" या सदैव प्रकाशवाला लोकहै । वहां ब्रह्मकोभी सेवाकी अपेक्षा नहींहै, अतः वहां ब्रह्मभी स्वतंत्रहै और ब्रह्मलोक निवासीभी स्वतंत्रहैं । कोई किसीका स्वामी या सेवक नहींहै। वहां स्वर्गकी भांति नाचना गाना नहींहै, अतः वहां किसीके वर और अभिशापसेभी हर्ष और शोक नहींहै ।

ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद ४ जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वात् ॥१७॥ इस सूत्रमें ऐसा कहाहैकि जगत्की उत्पत्ति आदिके कार्यको छोड़कर अन्य अणिमा आदिरूप ऐश्वर्य मुक्तोंको प्राप्तहोताहै किन्तु जगत्की उत्पत्ति आदिका कामतो नित्य सिद्ध ईश्वर ही करताहै ॥१७॥ प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारकमंडलस्थोक्तेः ॥१८॥ इस सूत्रमें कहा-

हैकि प्राप्त अधिकारवाला जो सूर्यमंडलमें अवस्थित परमात्मा ईश्वरहै—उसीके आधीन उपासकोंको स्वराज्य प्राप्ति होतीहै, स्वतंत्र नहीं अर्थात् वे बाह्य सृष्टिमें हस्तक्षेप नहीं करसकते ।

छान्दोग्य० अ० ८ खण्ड १२ की "मनसैतान्कामान्पश्यन्नमते" —इन कामनाओंको मनसेही प्राप्तकरताहुआ रमणकरताहै । इस श्रुतिसे दिव्यमनसेही सुनता देखता बोलताहै अर्थात् वहां एक इन्द्रिय केवल दिव्य मनहीहै-उसीकेद्वारा सब इन्द्रियोंके कार्योंको करलेताहै । जिस किसी सम्बन्धीको मिलनाचाहे तो उसकी मनसे कल्पना करतेसमयही वह मानसिक सम्बन्धी उसके पास आकर मिलजाताहै । वहां जिस किसी पदार्थकी कल्पना करताहै—उसे वही प्राप्त होजाताहै। देखोजी, वहां उसकी दृष्टि-में दूसरा तो कोई है ही नहींहै, अतः वहां उसे कुछ विक्षेप नहींहै। इसप्रकार वह शुद्ध सात्विक दिव्यमनसे, दिव्य भोगोंको भोगता-हुआ ब्रह्मलोकमें निवास करताहै । फिर वहांसे दूसरे मन्वन्तरमें लौटकर इस मर्त्यलोकमें या किसी अन्य लोकमें आजाताहै । देखोजी, वहांसे कोई बल पूर्वक इसे निकाल नहीं देताहै । इसने तो इतने समयकीही इच्छाकरके उपासना की थी, अतः इसका वहांसे लौट आनाही उचितहै ।

छान्दोग्य० अ० ८ की अन्तिम "न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते"—फिर नहीं लौटताहै, फिर नहीं लौटताहै—

या अशुभ कर्म करनेकेलिए प्रेरताहै । इसप्रकार प्राज्ञात्मा प्रेरक होनेसे ईश्वरहै और अन्दर प्रेरणा करनेसे इसकाही नाम अन्तर्यामीहै । बुद्धि या विज्ञानमय प्रेर्य या जीवहै । बृहदा० अ० ३ ब्राह्मण ७ श्रुति ३—"यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमंतरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः" याज्ञवल्क्यजी कहतेहैं कि हे उद्दालक, जो पृथिवीमें स्थितहै, पृथिवीके अन्दरहै, जिसे पृथ्वी नहीं जानतीहै, जिसका पृथ्वी शरीरहै. जो पृथ्वीके अन्दर रहताहुआ उसे प्रेरताहै, यह तेरा अविनाशी आत्मा (स्वस्वरूप) अन्तर्यामीहै या अन्दरमेंप्रेरणाकरनेवालाहै । इसके आगेकी श्रुतियोंने जल अग्नि अन्तरिक्ष वायु दिवि आदित्य चन्द्रमा तारे आकाश तम और तेजके विषयमेंभी ऐसाहीकहाहै । यह देवताओंमें अन्तर्यामी कहागयाहै । इसके आगे अधिभूतमें अन्तर्यामीहै, जोकि सर्वभूतोंमें स्थितहै । इसके आगे अध्यात्ममें अन्तर्यामी कहाहै—जोकि प्राण वाणी चक्षु श्रोत्र मन त्वचा विज्ञान और रेतमें स्थितहुआ प्रेरणाकरताहै, ये उसे नहीं जानसकते, यह इन सबके अन्दरमें रहकर प्रेरणा करताहै—यह तेरा अविनाशी आत्मा (अपना आप) अन्तर्यामीहै तात्पर्य यहहै कि तेरा स्वरूप सच्चिदानन्द आत्मा, केवल तेरेही जड़शरीरके अन्दर रहकर इन मन वाणी आदिकोंका

अन्तर्यामी नहींहै, यहतो व्यापकहै-इससे यह सच्चिदानन्द सभी जड़जगतका अन्तर्यामीहै या अन्दरमेंप्रेरकहै। अब इसके आगेके पाठको लीजिए। **अदृष्टो द्रष्टा अश्रुतः श्रोता अमतो मन्ता अविज्ञातो विज्ञाता नान्योऽतोस्ति द्रष्टा नान्योऽतोस्ति श्रोता नान्योऽतोस्ति मन्ता नान्योऽतोस्ति विज्ञाता एष त आत्मा अन्तर्याम्य-मृतोऽन्यदार्तम्। नतो होद्दालक आरुणिरुपरराम"**

यह सत्यज्ञानानन्द अन्तर्यामी आत्मा, पृथिवीसे आदि लेकर और रेत पर्यन्त किसीभी जड़ वस्तुसे न दीखनेवाला होता-हुआभी सबका द्रष्टाहै या देखनेवालाहै, न सुननेमें आनेवाला होताहुआ भी श्रोताहै या सुननेवालाहै, मननमें न आनेवाला होताहुआभी मन्ताहै या मननकरनेवालाहै, जाननेमें न आनेवाला होताहुआभी विज्ञाताहै या जाननेवालाहै, इससे भिन्न अन्य कोई द्रष्टा नहींहै, इससे भिन्न अन्य कोई श्रोता नहींहै, इससे भिन्न अन्य कोई मन्ता नहींहै, इससे भिन्न अन्य कोई विज्ञाता नहींहै, यह तेरा अविनाशी आत्मा अन्तर्यामीहै, इससे भिन्न और सब विनाशीहै। इतना सुनकर आरुणिपुत्र उद्दालक प्रश्न करनेसे उपरामहोगया। यह श्रुतिका अर्थहै।

लो प्यारे मित्रजी, वेदरूपी बड़ी सरकारकी इस आज्ञासे तो प्रत्येक शरीरमें देखनेवाला जाननेवाला और अन्तर्यामी एकही

इस श्रुतिसे, जिस मनुष्यने, ब्रह्मलोकके सुखोंको भोगकर कैवल्य-मुक्तिकी भावनासे ब्रह्मकी दृढ़तम उपासनाकीहै वह मुक्त होजाताहै। मुंडक उप० मुंडक १ खण्ड २ " तपः श्रद्धे ये" इत्यादि मंत्रसे, वानप्रस्थी और भिक्षामांगकर खानेवाले संन्यासी-लोग, सूर्यकेद्वारा ब्रह्मलोकमें जातेहैं, जहां अविनाशी परमात्माका निवासहै। मुंडक ४ "वेदान्त विज्ञान"—इत्यादि मंत्रसे, वेदान्तके विज्ञानसे परमात्माकी अभेद उपासना करनेवाले एवं शुद्ध अन्तःकरणवाले यतिलोग, सर्वत्यागद्वारा ब्रह्मलोकमें पहुँचकर परके अन्तकालरूपी महाप्रलयके आगमनमें आदित्यब्रह्मसे अखंड अद्वैतब्रह्मके ज्ञानको प्राप्तकरके सबके सबही आदित्यब्रह्मकी मोक्षके साथही मुक्त होजातेहैं। ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद ३ सूत्र १०

"कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात्"

—कार्यब्रह्मलोककी प्रलय उपस्थितहोनेपर वहांपर, ब्रह्मकेद्वारा ज्ञान प्राप्तकरके, सबके सबही हिरण्यगर्भके सहित परब्रह्म—परमपदरूपी कैवल्यमुक्तिको प्राप्त होजातेहैं। उपनिषदोंमें ऐसी मुक्तिको क्रम-मुक्ति कहागयाहै। इसलिये ब्रह्मलोकके भोग चाहनेवाले उपासकोंको पीछे कहीगई रीतिसे आदित्यब्रह्मकी अभेद उपासना करनीचाहिए। कारणकि आदित्यनिवासी अपरब्रह्मही उपास्य तथा प्राप्यब्रह्म या प्राप्तकरनेकेयोग्यब्रह्महै।

देखोजी, एक दो महानुभावोंने अपने २ ग्रन्थोंमें, बैकुंठलोक

आदि लोकोंकी यह व्यवस्था बनाईहै कि एक ब्रह्मलोकही उपासकोंकी भावनाके अनुसार, उन्हें वैकुंठ आदिके रूपमें भिन्न २ प्रतीत होताहै। परन्तु यह व्यवस्था उपनिषदोंके तथा ब्रह्मसूत्रके आधारपर नहींहै। दूसरी बात यह कि पुराणोंमेंभी ऐसी व्यवस्था नहींहै। क्योंकि वे अपने अपने उपास्य ईश्वरके वैकुंठलोक आदि लोकोंको कल्पित न मानकर उन्हें वास्तविक बनारहेहैं। इसलिये उपनिषदोंके तथा ब्रह्मसूत्रके अनुसार अपरब्रह्मका ब्रह्मलोकही विशेषलोकहै तथा वही उपास्य और प्राप्यब्रह्महै।

पूर्वोक्तरीतिसे वैदिक ब्रह्म विचारमें प्राप्यब्रह्म नामवाला चौथा प्रकरण समाप्तहुआ।

५ प्राज्ञात्मा ईश्वर अन्तर्यामी

सब जीवोंका अपना स्वरूप ईश्वरहै और अन्तर्यामीहै।

सुषुप्तिकी मध्य अवस्थाका नाम तुरीय अवस्थाहै। उसीके अभिमानी या स्थानवाले सच्चिदानन्दका नाम इच्छारहितहोनेसे शुद्धआत्माहै। सुषुप्तिकी आदि और अन्तिम अवस्थाका नाम कारणशरीर या आनन्दमयकोशहै। यह अति सूक्ष्म अस्मि हूं इसप्रकारकी एक वृत्तिहै। ऐसी वृत्ति उत्पन्न होजानेसे उसी शुद्ध आत्माका नाम अब प्राज्ञ होगयाहै। यही प्राज्ञात्मा उस सूक्ष्मवृत्तिको बुद्धिरूप धारणकरनेकेलिए फिर उस बुद्धिको शुभ

या अशुभ कर्म करनेकेलिए प्रेरताहै। इसप्रकार प्राज्ञात्मा प्रेरक-होनेसे ईश्वरहै और अन्दर प्रेरणा करनेसे इसकाही नाम अन्त-र्यामीहै। बुद्धि या विज्ञानमय प्रेर्य या जीवहै। बृहदा० अ० ३ ब्राह्मण ७ श्रुति ३ —"यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमंतरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः" याज्ञवल्क्यजी कहतेहैं कि हे उद्दालक, जो पृथिवीमें स्थितहै, पृथिवीके अन्दरहै, जिसे पृथ्वी नहीं जानतीहै, जिसका पृथ्वी शरीरहै. जो पृथ्वीके अन्दर रहताहुआ उसे प्रेरताहै, यह तेरा अविनाशी आत्मा (स्वस्वरूप) अन्तर्यामीहै या अन्दरमेंप्रेरणा-करनेवालाहै। इसके आगेकी श्रुतियोंने जल अग्नि अन्तरिक्ष वायु दिवि आदित्य चन्द्रमा तारे आकाश तम और तेजके विष-यमेंभी ऐसाहीकहाहै। यह देवताओंमें अन्तर्यामी कहागयाहै। इसके आगे अधिभूतमें अन्तर्यामीहै, जोकि सर्वभूतोंमें स्थित-है। इसके आगे अध्यात्ममें अन्तर्यामी कहाहै—जोकि प्राण वाणी चक्षु श्रोत्र मन त्वचा विज्ञान और रेतमें स्थितहुआ प्रेरणाकरता-है, ये उसे नहीं जानसकते, यह इन सबके अन्दरमें रहकर प्रेरणा करताहै—यह तेरा अविनाशी आत्मा (अपना आप) अन्तर्यामीहै। तात्पर्य यहहै कि तेरा स्वरूप सच्चिदानन्द आत्मा, केवल तेरेही जड़शरीरके अन्दर रहकर इन मन वाणी आदिकोंको

अन्तर्यामी नहींहै, यहतो व्यापकहै—इससे यह सच्चिदानन्द सभी जड़जगतका अन्तर्यामीहै या अन्दरमेंप्रेरकहै। अब इसके आगेके पाठको लीजिए। **अदृष्टो द्रष्टा अश्रुतः श्रोता अमतो मन्ता अविज्ञातो विज्ञाता नान्योऽतोस्ति द्रष्टा नान्योऽतोस्ति श्रोता नान्योऽतोस्ति मन्ता नान्योऽतोस्ति विज्ञाता एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतोऽन्यदार्तम्। ततो होद्दालक आरुणिरुपरराम"**

यह सत्यज्ञानानन्द अन्तर्यामी आत्मा, पृथिवीसे आदि लेकर और रेत पर्यन्त किसीभी जड़ वस्तुसे न दीखनेवाला होताहुआभी सबका द्रष्टाहै या देखनेवालाहै, न सुननेमें आनेवाला होताहुआ भी श्रोताहै या सुननेवालाहै, मननमें न आनेवाला होताहुआभी मन्ताहै या मननकरनेवालाहै, जाननेमें न आनेवाला होताहुआभी विज्ञाताहै या जाननेवालाहै, इससे भिन्न अन्य कोई द्रष्टा नहींहै, इससे भिन्न अन्य कोई श्रोता नहींहै, इससे भिन्न अन्य कोई मन्ता नहींहै, इससे भिन्न अन्य कोई विज्ञाता नहींहै, यह तेरा अविनाशी आत्मा अन्तर्यामीहै, इससे भिन्न और सब विनाशीहै। इतना सुनकर आरुणिपुत्र उद्दालक प्रश्न करनेसे उपरामहोगया। यह श्रुतिका अर्थहै।

लो प्यारे मित्रजी, वेदरूपी बड़ी सरकारकी इस आज्ञासे तो प्रत्येक शरीरमें देखनेवाला जाननेवाला और अन्तर्यामी एकही

आत्माहै। दूसरा कोई देखनेवाला सुननेवाला मननकरनेवाला जाननेवाला और अन्तर्यामी नहींहै। इससे चाहे तो आप अपने आपकोही इस शरीरमें देखने और सुननेवाला आदि मानलो या फिर अपनेसे भिन्न किसी दूसरेही ईश्वरको इस शरीरमें देखने और सुननेवाला आदि मानलीजिए। द्रष्टा और अन्तर्यामी तो इस शरीरमें एकही रहसकेगा। उपरोक्त बड़ी सरकारकी आज्ञाके विपरीत और अपने अपने अनुभवके विपरीत दूसरा अन्य कोई द्रष्टा और अन्तर्यामी नहीं रहसकेगा। अतः उसका इस शरीरमें निवास करना उचित नहींहै। अस्तु। उद्दालकजी तो बुद्धिमान थे—इससे वे तो प्रत्येक शरीरमें उपाधिके भेदसे द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता और अन्तर्यामीका भेद जानकर वास्तवमें उसे एकही अनुभव करके मौन होगए। आप अभी संभवहै न भी चुप रह सकेंगे। क्योंकि आप यदि हठधर्मी होवेंगे या किसी संप्रदायमें जकड़ेगए होवेंगे तो आपको मौन करानेकी किसीकीभी सामर्थ्य नहींहै। कारण कि आप सत्यतासे बहुतही दूरहैं।

अभी और लीजिए। मांडूक्य की "एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्यामी"—यही सबका ईश्वरहै, यही सबको जाननेवालाहै और यही अन्तर्यामीहै, इत्यादि श्रुतिके अनुसार, प्राज्ञात्माही सर्वेश्वर आदिहै, अर्थात् यह समष्टिरूपसे या अपने सभी प्राज्ञोंकेरूपसे सर्वेश्वर सर्वज्ञ और सबका अन्तर्यामीहै।

श्रीगीता अ० १८ श्लोक ६१—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढ़ानि मायया ॥६१॥

हे अर्जुन, प्राज्ञात्मा ईश्वर, अपने संपूर्ण प्राज्ञोंकेरूपद्वारा सब प्राणियोंके हृदय स्थानमें, विज्ञानमय या बुद्धिरूपी सर्वभूतोंको जोकि शरीररूपी यंत्रमें आरूढ़हैं उन्हें मायासे भ्रमाताहुआ स्थितहै। इस श्लोकका वास्तविक अर्थ यही है । कारणकि जीवोंका उपास्य और प्राप्य अन्तर्यामी ब्रह्म, प्रत्येक देहमें स्वरूपसे स्थित नहींहै। क्योंकि "नान्योऽतोस्ति द्रष्टा"—इस श्रुतिसे और अपने अनुभवसे प्रत्येक शरीरकेप्रति एक ही अन्तर्यामी सिद्धहोताहै। अतः प्राज्ञात्माही ईश्वरहै, और अन्तर्यामीहै । इसलिये प्रत्येक जीवात्मा अपनी बुद्धिको शुभकी ओर वा अशुभकी ओर प्रेरणाकरके भला बुरा साधु असाधु आस्तिक या नास्तिक जो कुछ भी बनना चाहे बनसकताहै । क्योंकि यह ऊपरकहीगई रीतिसे कर्मकरनेमें स्वतन्त्रहै ।

मुण्डक उप० मुण्डक ३ मंत्र १—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया—
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य—
नश्नन्नन्यो ऽभिचाकशीति ॥

एक साथ रहनेवाले तथा परस्पर सख्यभाव रखनेवाले दो पक्षी एकही शरीररूपी वृक्षका आश्रयलेकर रहतेहैं, उन दोनोंमें एक उस वृक्षके कर्मरूप फलोंका स्वादलेकर खाताहै, और दूसरा न खाताहुआ केवल देखताहै। इस मंत्रके अनुसार प्रत्येक शरीरमें दो पक्षी रहतेहैं। ब्रह्मसूत्र अ० १ पाद २ "विशेषणाच्च" ॥१२॥ इस सूत्रके शांकरभाष्यके अनुसार उन दोनोंमें बुद्धिविशिष्ट चैतन्य विज्ञानात्मा कहलाताहै। और दूसरा निरुपाधि चैतन्य परमात्मा-है। इनमें कर्ता भोक्ता विज्ञानात्मारूपी जीवही शुभाशुभ कर्मोंको करके उनके सुख और दुःखरूप फलोंका भोक्ताहै। दूसरा निरुपाधि चैतन्य परमात्मा, किसीभी कर्मका कर्ता तथा भोक्ता न होताहुआ केवल द्रष्टाहै। वास्तवमें, विज्ञानात्मारूपी जीवभी बुद्धिके लीनहोजानेपर, सुषुप्ति अवस्थामें उस सद्रूप परमात्मासे भिन्न नहींहै। क्योंकि बुद्धिरूप उपाधिके बिना विज्ञानात्मा नामी जीवभी कर्ता भोक्ता न होकर केवल अद्वैत द्रष्टा ब्रह्महै। भाष्यमें, पैंगीरहस्य ब्राह्मणके अनुसार, उक्त मंत्रकी दूसरी व्यवस्था इसप्रकार कीगईहै कि उन दोनोंमें बुद्धिरूपी पक्षी तो कर्ता और भोक्ताहै। दूसरा क्षेत्रज्ञ या चैतन्यात्मा कर्ता और भोक्ता न होताहुआ केवल द्रष्टाहै। अस्तु। मेरे विचारमें, पहली व्यवस्था की अपेक्षा दूसरी रीति अच्छी प्रतीत होतीहै। कारणकि "धियो यो नः प्रचोदयात्"—वह हमारी बुद्धियोंको शुभकी ओर प्रेरणा-करे, "स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु"—वह हमें अच्छी बुद्धिके

युक्त करे, "तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु" वह मेरा मन शुभ संकल्प करनेवालाहो, ऐसी प्रार्थनाएं केवल बुद्धि मनके प्रेरणार्थ की जातीहैं, चैतन्यकेलिए नहीं। इसलिए परिणामी स्वभाव वाली बुद्धिही कर्ताभोक्ताहै। अपरिणामी और निष्क्रिय-होनेसे चैतन्यात्मा कर्ता भोक्ता न होकर केवल द्रष्टाहै।

पूर्वपक्ष—कुछलोग, इसमंत्रमें जीवका और उपास्य ईश्वरका ग्रहण-करके इसका यह अर्थ करतेहैं कि प्रत्येक शरीरमें उन दोनोंमें जीव तो भोक्ताहै तथा उपास्य ईश्वर न भोक्ताहुआ केवल देखताहीहै।

सिद्धांत या उत्तरपक्ष—यदि यह मानलियाजाए कि जीवके समान फल प्रदाता उपास्य ईश्वरभी प्रत्येक शरीरमें निवास करताहै तबतो जितने शरीररूपी वृक्षहैं उतने जीवतो हैं ही किन्तु ईश्वर भी उतनेही अर्थात् असंख्यही मानने पड़ेंगे। परन्तु ऐसा मानने-केलिये कोई तैयार नहींहै। इसलिए जोभी लोग, शुद्धसत्वविशिष्ट उपास्य और प्राप्यब्रह्म ईश्वरको स्वरूपसे व्यापक बतानेवाले और सुननेवालेहैं वे वक्ता और श्रोता दोनोंही अज्ञानी अन्ध-श्रद्धालु और ईश्वरसे विमुख तथा उसकी भक्तिके विरोधि माननेकेयोग्यहैं। देखोजी, वह आपके मलमें मूत्रमें और जूता आदि अपवित्र स्थानोंमें निवास क्योंकरेगा। तुमें लज्जा नहीं आतीहै और नहीं आवेगी अपने परमश्रद्धेय परमपूज्य पुरुषो-त्तम स्वामीको अपने मल मूत्र और जूता आदि अशुद्ध

स्थानोंमें बैठातेहुए। इसलिए केवल अन्धपरंपरासे श्रवणकीहुई और अपने अनुभवसे शून्य बातोंको ग्रहण नहीं करनाचाहिए। कुछ काम तो अपनी बुद्धिसेभी लेनाचाहिए । अतः मायापति आदित्यात्मा ब्रह्म ईश्वर, अपने स्वरूपसे व्यापक नहींहै, वह ज्ञानकेद्वाराही व्यापकहै या उसका ज्ञान व्यापकहै। वह ज्ञानमें स्वतन्त्रहै, वह चाहे अपने ज्ञानको मल मूत्र आदिमें लेजाए या पवित्र स्थानोंमें लेजाए, क्योंकि वह स्वतन्त्रहै । हमलोगभी अपने वृत्तिज्ञानको कान और नेत्र आदि इन्द्रियोंद्वारा या केवल मनद्वारा एक स्थानमें बैठेहुए बहुत दूरतक एवं शुभ या अशु-भस्थानमें लेजायाकरतेहैं । क्योंकि हमलोगभी अपने अपने ज्ञानके ईश्वरहैं या प्रेरकहैं। इसलिए आदित्यब्रह्म ईश्वरका, ज्ञानही व्यापक है वह ज्ञानी या ज्ञानवाला स्वरूपसे व्यापक नहींहै। इससे सिद्ध होगयाकि उक्त मंत्रमें स्वामी और सेवकरूप आत्मा और परमात्मा-का ग्रहण नहींहै । विज्ञानात्मा और तुरीय शुद्ध आत्माकाही ग्रहण करना निर्दोषहोनेसे योग्यहै । और जो लोग, फल प्रदाता उपास्य ईश्वरकोही अन्तर्यामी या सबके अन्दर प्रेरणाकरनेवाला मानरहे-हैं वे लोगभी अज्ञानी और अन्धश्रद्धालुहोनेसे दयाके पात्रहैं, अतः वे क्षम्य या क्षमाकरनेकेयोग्यहैं। क्योंकि जीव, कर्म करनेमें स्वतंत्रहै। यदि ऐसा नहींहै तो फिर जबकि कोई गोघातक या कसाई गोहत्यारूपी एक नया पापकर्म करताहै, क्या तुम मान-लोगेकि वह हिंसाकर्म, जिसे तुम अन्तर्यामी कहरहेहो वह कसाई-

के अन्दर प्रेरणाकरके करवारहाहै। क्या तुम मानलोगे कि हमारा मानाहुआ अन्तर्यामी व्याधके अन्दर प्रेरणाकरके उससे एक नवीन हिंसा कर्म करारहाहै । क्या तुम मानलोगेकि हमारा सर्वज्ञ अन्तर्यामी किसीके अन्दर प्रेरणाकरके उससे चोरी या भयंकर डाका डलवारहाहै । क्या तुम मानलोगेकि हमारा आराध्य परमात्मा अन्तर्यामी, द्यूत शराब झूठ दंभ मांसभक्षण और अपनी स्त्रीके होतेहुए वेश्यागमन, इत्यादि पाप कर्म, जोकि उस अन्तर्यामी परमात्मा ईश्वरने अपने बनाएहुए वेदोंमें निषेध किएहैं, फिर उन्हीं पापकर्मोंको वही हमारा स्वामी जीवोंके अन्दरमें प्रेरणाकरके उनसे करवारहाहै । क्या तुम मानलोगेकि हमारे उपास्य ईश्वर अन्तर्यामीने, यवनके अन्दरप्रेरणाकरके, काशीमें शिव, अयोध्यामें राम, मथुरामें कृष्ण और कैंथलमें हनुमानजी इत्यादिके मन्दिरोंको छिन्न भिन्न करवाकर, अपने अनन्य प्रेमियों को कष्ट पहुँचानेकेलिए उनके स्थानमें मसजिदें बनवाई थीं। शोकहै तुमलोगोंका अन्धश्रद्धायुक्त अनुभवसे शून्य ऐसी बुद्धि पर—इसीसे तुमलोग दयाके पात्रहो । अस्तु । गीता अध्याय १५ श्लोक ८ "शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः" हे अर्जुन, जब यह ईश्वर, दूसरे किसी शरीरको प्राप्तकरताहैं और इस शरीरसे उत्क्रमण यानि इसे त्यागताहै । इस श्लोकमें जीवात्माका नामभी ईश्वरहै ।

ब्रह्मसूत्र या वेदान्तदर्शनकोभी लेलीजिए। श्रीशंकराचार्यजीने,

स्थानोंमें बैठातेहुए। इसलिए केवल अन्धपरंपरासे श्रवणकीहुई और अपने अनुभवसे शून्य बातोंको ग्रहण नहीं करनाचाहिए। कुछ काम तो अपनी बुद्धिसेभी लेनाचाहिए । अतः मायापति आदित्यात्मा ब्रह्म ईश्वर, अपने स्वरूपसे व्यापक नहींहै, वह ज्ञानकेद्वाराही व्यापकहै या उसका ज्ञान व्यापकहै। वह ज्ञानमें स्वतन्त्रहै, वह चाहे अपने ज्ञानको मल मूत्र आदिमें लेजाए या पवित्र स्थानोंमें लेजाए, क्योंकि वह स्वतन्त्रहै । हमलोगभी अपने वृत्तिज्ञानको कान और नेत्र आदि इन्द्रियोंद्वारा या केवल मनद्वारा एक स्थानमें बैठेहुए बहुत दूरतक एवं शुभ या अशुभस्थानमें लेजायाकरतेहैं। क्योंकि हमलोगभी अपने अपने ज्ञानके ईश्वरहैं या प्रेरकहैं। इसलिए आदित्यब्रह्म ईश्वरका, ज्ञानही व्यापक है वह ज्ञानी या ज्ञानवाला स्वरूपसे व्यापक नहींहै। इससे सिद्ध होगयाकि उक्त मंत्रमें स्वामी और सेवकरूप आत्मा और परमात्माका ग्रहण नहींहै । विज्ञानात्मा और तुरीय शुद्ध आत्माकाही ग्रहण करना निर्दोषहोनेसे योग्यहै । और जो लोग, फल प्रदाता उपास्य ईश्वरकोही अन्तर्यामी या सबके अन्दर प्रेरणाकरनेवाला मानरहेहैं वे लोगभी अज्ञानी और अन्धश्रद्धालुहोनेसे दयाके पात्रहैं, अतः वे क्षम्य या क्षमाकरनेकेयोग्यहैं। क्योंकि जीव, कर्म करनेमें स्वतंत्रहै। यदि ऐसा नहींहै तो फिर जबकि कोई गोघातक या कसाई गोहत्यारूपी एक नया पापकर्म करताहै, क्या तुम मानलोगेकि वह हिंसाकर्म, जिसे तुम अन्तर्यामी कहरहेहो वह कसाई-

के अन्दर प्रेरणाकरके करवारहाहै। क्या तुम मानलोगे कि हमारा मानाहुआ अन्तर्यामी व्याधके अन्दर प्रेरणाकरके उससे एक नवीन हिंसा कर्म करारहाहै। क्या तुम मानलोगेकि हमारा सर्वज्ञ अन्तर्यामी किसीके अन्दर प्रेरणाकरके उससे चोरी या भयंकर डाका डलवारहाहै। क्या तुम मानलोगेकि हमारा आराध्य परमात्मा अन्तर्यामी, द्यूत शराब झूठ दंभ मांसभक्षण और अपनी स्त्रीके होतेहुए वेश्यागमन, इत्यादि पाप कर्म, जोकि उस अन्तर्यामी परमात्मा ईश्वरने अपने बनाएहुए वेदोंमें निषेध किएहैं, फिर उन्हीं पापकर्मोंको वही हमारा स्वामी जीवोंके अन्दरमें प्रेरणाकरके उनसे करवारहाहै। क्या तुम मानलोगेकि हमारे उपास्य ईश्वर अन्तर्यामीने, यवनके अन्दरप्रेरणाकाके, काशीमें शिव, अयोध्यामें राम, मथुरामें कृष्ण और कैंथलमें हनुमानजी इत्यादिके मन्दिरोंको छिन्न भिन्न करवाकर, अपने अनन्य प्रेमियोंको कष्ट पहुँचानेकेलिए उनके स्थानमें मसजिदें बनवाई थीं। शोकहै तुमलोगोका अन्धश्रद्धायुक्त अनुभवसे शून्य ऐसी बुद्धि पर—इसीसे तुमलोग दयाके पात्रहो। अस्तु। गीता अध्याय १५ श्लोक ८ "शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः" हे अर्जुन, जब यह ईश्वर, दूसरे किसी शरीरको प्राप्तकरताहैं और इस शरीरसे उत्क्रमण यानि इसे त्यागताहै। इस श्लोकमें जीवात्माका नामभी ईश्वरहै।

ब्रह्मसूत्र या वेदान्तदर्शनकोभी लेलीजिए। श्रीशंकराचार्यजीने,

ब्रह्मसूत्र अ० १ पाद २ सूत्र २० "शारीरश्चोभयेपि हि भेदेनैनमधीयते" –इससूत्रके अपने भाष्यद्वारा यह घोषित कियाहै कि "यो विज्ञाने तिष्ठन्" (बृ० ३ । ७ । २२) इति काण्वाः । "य आत्मनि तिष्ठन्" इति माध्यन्दिनाः इन दोनों शाखाओंमें, विज्ञान शब्द और आत्मनि शब्द जीवका वाचक है । और वह जीव विज्ञानमयहै, उस जीवसे अन्तर्यामी भिन्नहै। अविद्या कल्पित कार्यरूप सूक्ष्मशरीर उपाधिकेद्वारा और आनन्दमयरूप कारणउपाधिकेद्वारा, जीव और अन्तर्यामी ईश्वरका भेदहै, परमार्थसे नहींहै। क्योंकि एकही प्रत्यगात्मा या अन्तरात्माहै। दो आत्मा नहींहैं । एकही आत्माके भेदका व्यवहार उपाधिका कियाहुआहै, जैसाकि घटाकाश और महाकाशका भेदहै। वास्तवमें भेद नहींहै । इस भाष्यका तात्पर्य यहहै कि एकही आत्मा, आनन्दमयरूप कारण उपाधिकेद्वारा प्राज्ञरूमसे अन्तर्यामी–प्रेरकहै और विज्ञानमयरूप कार्य उपाधिकेद्वारा तैजसरूपसे प्रेर्य या प्रेरणाकियाजाता है । परन्तु वास्तवमें ये दो आत्मा नहींहैं। इससेभी सिद्ध होगया कि यह प्राज्ञात्मा अपनी बुद्धिका अपने आपही ईश्वरहै और अन्दरमें प्रेरणाकरनेसे अन्तर्यामीहै ।

एवं या इसप्रकार वैदिक ब्रह्मविचारमें प्राज्ञात्मा ईश्वर अन्तर्यामी नामवाला पांचवां प्रकरण समाप्त हुआ ।

६ आदित्यात्माब्रह्म ईश्वर अन्तर्यामी

आदित्यशरीरीअपरब्रह्म, ईश्वरहोनेसे अन्तर्यामीहै।

जब हम वैदिक मंत्रोंमेंसे गायत्रीमंत्रद्वारा प्रार्थना करेंगे ।

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्—वह परमात्मा सविता सूर्यदेव, हमारी बुद्धियोंको शुभकी ओर प्रेरणाकरे। तब वह हमारे अन्दरमें प्रेरणा करेगा इससे वह हमारा अन्तर्यामी होजाएगा । गायत्रीमंत्रका पूरा अर्थ, उपास्य प्रकरणमें लिखाजाचुकाहै, अतः वहां देखलेना । जब हम किसी अन्य वैदिक मंत्रकेद्वारा या स्मृतियोंके किसी श्लोककेद्वारा या अन्य किसी ग्रन्थके सूत्रआदिकेद्वारा या अन्य किसी भाषाके-द्वारा अपनी बुद्धिको शुभकी ओर प्रवृत्तकरानेकेलिए, आदित्यात्मा ईश्वरसे प्रार्थना करेंगे, तब वह हमारा अन्तर्यामी होजाएगा। या फिर हमने स्वतंत्रहोकर किए जो पुण्य पापरूपी शुभ और अशुभ कर्म, उनका सुख और दुख फल देनेकेलिए वह फल प्रदाता आदित्यात्मा ईश्वर हमारा अन्तर्यामी बनजाताहै ।

ब्रह्मसूत्र या वेदान्तदर्शनमें, पूर्वपक्षके रूपमें यह शंका कीगई-हैकि ईश्वर, किसी मनुष्यको उच्च किसीको नीच किसीको साधु किसीको चोर किसीको आस्तिक किसीको नास्तिक किसीको स्वरूपवान किसीको कोढ़ी किसीको अल्पायुमें मारदेताहै, किसी-

को सैंकड़ों वर्ष बीतनेपर मारताहै, किसीको धनी किसीको निर्धन किसीको विद्वान् किसीको अविद्वान् किसीको राजा किसीको दरिद्री बनादेताहै। और भी भला तथा बुरा आदिके रूपमें जीवों को बनादेताहै। वह किसी जीवको उच्च या नीच बनानेसे तो विषमता दोषवालाहै। अतः एक दोष तो ईश्वरमें यहहै। दूसरा दोष ईश्वरमें यहहै कि वह जीवोंको अनेकप्रकारके रोगोंसे दुखी करताहै और उनकी मृत्युभी करताहै, अतः उसमें निर्घृणा या निर्दयताभी है। इसप्रकार विषमता और निर्दयता ये दोनों दोष ईश्वरमेंहैं। ऐसी शंका करके, शंका और समाधानकेरूपमें अध्याय २ पाद १ सूत्र ३४ "**वैषम्य नैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति**" यह सूत्रहै। इसका अर्थहै कि विषमता और निर्दयता ईश्वरमें नहींहैं। क्योंकि वह जीवोंके पुण्य पापरूपी कर्मोंकी अपेक्षा रखताहै अर्थात् मनुष्य, जैसा पुण्य या पापरूप कर्मकरताहै उसके अनुसारही ईश्वर, मनुष्यको उस कर्मका फल, सुख या दुख देदेताहै, अतः आदित्यात्मा ब्रह्मईश्वरमें ये दोनों ही दोष नहीं हैं।

कौषीतकी उप० अध्याय ३ श्रुति ८ "**एष ह्येवैनंसाधु कर्म कारयति तं यमन्वानुनेषत्येष एवैनमसाधु कर्म कारयति तमेभ्यो लोकेभ्योनुनुत्सत**" यह परमात्मा ही उस जीवसे शुभ कर्म कराताहै— जिस मनुष्यको यह ऊपर

लेजाना चाहताहै , और यही ईश्वर, उससे पाप कर्म करादेता-है, जिसको इन मनुष्य आदि शरीरोंसे या भू आदि लोकोंसे नीचे गिराना चाहताहै। यह श्रुतिका अर्थहै। इस श्रुतिकेद्वारा यह शंका उत्पन्न होतीहैंकि ईश्वरही सब जीवोंको बड़ा छोटा सुखी दुखी आस्तिक नास्तिक आदि सभी रूपोंमें इनको प्रेरणाकरने-वालाहै, अतः भला या बुरा बनाना आदि जो कुछभीहै सब ईश्वरकेही आधीनहै, मनुष्योंके कुछभी आधीन नहींहै । परन्तु इस श्रुतिका ऐसा अर्थ नहींहै, जैसा इसका अर्थ तुम लोग समझ-रहेहो। इस श्रुतिका तात्पर्य अर्थ यह हैकि ईश्वर, भलाई करने-वाले मनुष्यसे उसकी सहायताके रूपमें उससे कोई ऐसा कर्म कराताहै जिससे वह औरभी उच्चताको प्राप्त होजाताहै। और जो मनुष्य, रावणके समान अति अभिमानी होकर बड़े बड़े अनर्थ करने लगजाताहै-तब उससे कोई ऐसा नीचकर्म कराताहै जिससे उसको नीचा देखना पड़ताहै तथा उसका अहंकार निवृत्त होजाताहै। यदि इस प्रकारकी श्रुतियों तथा अन्य वाक्यों का ऐसा अर्थ कियाजाएगा कि सबकुछ ईश्वरही करवाताहै-तब तो मनुष्योंकी कल्याणकेलिए ईश्वरकेद्वारा बनायागया जो विधि निषेधरूप वेद, वह सबका सबही व्यर्थ होजाताहै । क्योंकि मनुष्योंके तो बसकी कोई बातही नहीं रहजातीहै, यदि इनसे सबकुछ ईश्वरही करवाताहै। अतः मनुष्य, वास्तवमेंहो कर्म करने-में स्वतंत्रहै। इसप्रकार एकतो पुण्य पापरूपी कर्म करनेमें

स्वतंत्र होनेसे हम सभीलोग, अपने आप ईश्वर या प्रेरकहोनेसे अन्तर्यामीहैं, और दूसरा वह-जोकि प्रार्थना करनेपर और हमारे शुभाशुभ कर्मोंका सुख दुखरूप फल देनेमें आदित्यात्माब्रह्म ईश्वर अन्तर्यामीहै।

इसप्रकार वैदिक ब्रह्मविचारमें आदित्यात्माब्रह्मईश्वर अन्तर्यामी नामका छठा प्रकरण समाप्त हुआ।

७ अंशांशी ब्रह्म

विशुद्धब्रह्मसच्चिदानन्दका अंशहोनेसे जीवभी सच्चिदानन्दस्वरूपही है।

चतुष्पाद सत्यज्ञानानन्दका एकपाद सच्चिदानन्द, अंशोंके रूपमें हुआहै। महाप्रलयकी मध्य अवस्थामें सच्चिदानन्दका स्वगत आदि तीनों भेदोंसे रहितहोनेसे अनन्तरूप था, अतः वह चतुष्पादविशुद्धब्रह्म था। महाप्रलयकी अन्तिम अवस्थामें जब उसके एकपादमें इच्छा होगई तब वह तीनपाद विशुद्ध और एक पादसे माया तथा अविद्याके सहितहोनेसे अंशोंकेरूपमें विभक्त होगया या बटगया। उन अंशोंमें सबसे और सब प्रकार बड़ा अंश, मायापति आदित्यात्माब्रह्म ईश्वरहै। और जितनेभी ब्रह्मा विष्णु शिव तथा अन्यान्य देवी देवता एवं दैत्य दानव मानव पशु पक्षी कीट और पतंग आदिहैं, ये सब एक दूसरेकी अपेक्षा-से उस ब्रह्मके बड़े और छोटे अंशहैं। सच्चिदानन्दब्रह्म निर-व-

यवहै, अतः इसके ये सब मुख्य अंश न होकर अंश की भांति अंशहैं ।

अंशी नाम राशि या ढेरकाहै । अंश नाम, पाद भाग कण या हिस्सेकाहै । जो कुछ गुण आदि वस्तु अंशीमें होतीहै, वही गुण आदि वस्तु उसके अंशमें होतीहै, यह नियमहै। जैसाकि रूपरंग और खारापन नमकके अंशी या ढेरमेंहै, वही सफेदरूप और खारापन उसके अंश या कणमेंहै। जैसाकि सफेदरूप और मीठापन मिश्रीके अंशी या राशिमेंहै वही रूपरंग और मीठापन उसके अंश या कणमेंहै। जैसाकि उष्ण प्रकाश अग्निके अंशी-मेंहै वही उष्ण प्रकाश उसकी अंशरूपा चिन्गारीमेंहै । जैसाकि खारापन समुद्रमेंहैं वही खारापन उसकी अंशरूपा एक बूंदमेंहै । इसीप्रकार सोना चांदी लोहा पीतल आदि सभी वस्तुओंको लेलीजिए। जो कुछभी अंशीमें होगा वही उसके अंशमें अवश्य-ही होगा। जिससेकि अंशी परब्रह्म, सच्चिदानन्दस्वरूपहै, इसीसे उसके अंश ये आदित्यात्माब्रह्मईश्वर जीव सबके सब सच्चिदान्द स्वरूपहैं ।

मुण्डक उप० मुण्डक २ खण्ड १—"तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिंगा सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः । तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजा-यन्ते तत्र चैवापियन्ति" हे सोम्य, यही परब्रह्म सत्यहै,

जिसप्रकार प्रज्वलित अग्निमेंसे उसीके समानरूपवाली हजारों चिन्गारियां अनेकप्रकारसे प्रकटहोतीहैं उसीप्रकार अविनाशी परब्रह्मसच्चिदानन्दसे अनेकप्रकारके चर और अचर पदार्थ उत्पन्नहोतेहैं और अन्तमें उसीमें लीनहोजातेहैं। देखोजी, आप लोग, यदि हठधर्मी नहीं होवेंगे किन्तु समझदार होवेंगे तो इस मंत्रकेद्वारा निसन्देह समझगए होवेंगे कि सभी जीव, सच्चिदानन्दब्रह्मके अंशहोनेसे सच्चिदानन्दही हैं । भेद केवल इनमें शरीररूपी उपाधियोंकेद्वाराही है, वास्तवमें नहींहै ।

कठोपनिषद् अ० २ वल्ली ५ श्रुति ६—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो,
रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा,
रूपं रूपं प्रतिरूपो वहिश्च ॥

भावार्थ—जैसाकि एकही अग्नि, काष्ठमें प्रविष्टहोकर उसी काष्ठके समानरूपवाली होजातीहै अर्थात् जैसा जैसाभी उस काष्ठका सीधा या टेढ़ा आदि आकार होताहै—वैसाही आकार उसमें अग्निकाभी प्रतीत होनेलगताहै, परन्तु वास्तवमें अग्नि, सीधी और टेढ़ी नहींहै-उसीप्रकार, एकही सर्वभूतोंके अन्दर परब्रह्म सच्चिदानन्द, उसो २ आदित्यात्मा ईश्वरके तथा अन्य जीवोंके समान आकार वाला एवं उन्हीं उन्हींके सात्विक राजसिक

या तामसिक स्वभाववाला प्रतीत होनेलगजाताहै, और उनके बाहरभीहै, अर्थात यह सृष्टि तो उसका एकपादहै और वह तीनपाद विशुद्धसच्चिदानन्द, इस सृष्टिके बाहरहै । अग्निकी समानतामें अब बिजलीका दृष्टांतभी बहुत उपयोगीहै। क्योंकि बिजलीका प्रकाश, एकरूप होताहुआभी, हरे पीले लाल और नीले आदि बेल्लबोंकेद्वारा, जैसा उनका रंगहै उसी रंगके समान और जैसा उनका आकारहै उसी उसी आकारके समान और जैसा उनका पच्चीस पच्चास या सौ आदि नम्बरहै उस नम्बरकी मन्द और तेजीके समान प्रतीत होनेलगताहै । वास्तवमें बिजलीके प्रकाशमें उक्त ये भेद नहीं हैं ।

लो मित्रजी, उक्त श्रुतिकेद्वाराभी यदि आपकी बुद्धिमें सच्चिदानन्दका ब्रह्म रूप या व्यापकरूप आरूढ़ नहीं होताहै तो इसकेलिए आप, आदित्यात्माब्रह्मकी अभी कुछ समयतक और भक्ति कीजिए—तबही आपकी समझमें सच्चिदानन्दका व्याकरूप आसकेगा ।

कोई कोई भक्तलोग, देखोजी, मैं तो उस नाममात्रके भक्तको वास्तवमें भक्त नहीं कहूंगा, जोकि सत्यज्ञानानन्दकी ब्रह्मरूपताको खंडित करताहै । अस्तु । वह यह कहताहै कि परमात्मा तो सत् चित् आनन्द रूपहै-उसीका अंश यह जीवात्मा, सत् और चित् रूप तो है परन्तु यह आनन्दरूप नहींहै । यह जीव आनन्दको, ईश्वरसे उधारपर लेकरके अर्थात् उसकी भक्तिकरके

आनन्दको भोगताहै। परन्तु यह, शास्त्र संस्कारशून्य बच्चोंकी-सी बातहै। क्योंकि ऐसे अज्ञानीसे पूछनाचाहिये कि जीवकी एकाग्रतावृत्तिरूपी जो आनन्दमयकोशहै जोकि प्रत्येक जीवकी स्वाभाविक अवस्थाहै—यह आनन्दसे भरपूर कैसे नहींहै। अस्तु। इस उक्त पक्षमें इतना भाग तो बहुतही अच्छाहैकि यह जीवात्मा, ईश्वरकी भक्तिकरके धर्म अर्थ काम और मोक्ष नामके चार पदार्थोंमें अपने मनोअभिलषित पदार्थको प्राप्तकर आनन्दित होजाताहै। परन्तु यह कथन सर्वथाही विपरीतहैकि यह उसका अंश होतेहुएभी आनन्दरूप नहींहै। दूसरी बात यहकि जीवात्मा, उस ब्रह्मलोक या आदित्यनिवासी मायापति ईश्वरका अंश नहींहै, जिसका अंश जीवात्माको ये भक्तलोग मानरहेहैं। यदि उस मायापति ईश्वरका अंश, इस जीवात्माको मानेंगे तबतो यह जीवात्माभी मायापति ईश्वरका अंशहोनेसे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान आदि ईश्वरके धर्मोंवाला मानना पड़ेगा। परन्तु ऐसा तो ये भक्तलोग, मान नहीं रहेहैं। और नाहीं यह अनुभवमेंही आरहा है। इसलिए यह जीवात्मा, मायापतिका अंश न होकर, केवल सत्यज्ञानानन्दरूपब्रह्मकाही अंश, पीछेकहीगई रीतिसे सिद्ध-होताहै, उसके बड़े अंशरूप शुद्धसत्वमायापति ईश्वरका नहीं। जबकि यह जीवात्मा, ब्रह्मसच्चिदानन्दका अंशहै—इसीसे यहभी उसका अंशहोनेसे सच्चिदानन्दहीहै, यह केवल सत् और चित् रूप नहींहै। माया रहित सच्चिदानन्दका नाम ब्रह्महै। मायासहित

सच्चिदानन्दका नाम ईश्वरहै । और मनरूपी अविद्याके सहित सच्चिदानन्द जीव कहलाताहै । अस्तु ।

तैतरीय- ब्रह्मानन्दवल्ली अनुवाक ८ में श्रुति-**सैषा आनन्दस्य मीमांसा भवति**-वह यह आनन्दकी मीमांसा या विचार कीजातीहै । जो मनुष्य युवा या युवकहै तोभी ऐसा वैसा नहीं किन्तु श्रेष्ठ आचरण युक्तहो, अध्यायकः नाम अधीतवेदहो, शासनयुक्त और अत्यन्त दृढ़ बलशालीहो उसको यह सब पृथिवी अश्व गज आदि धनसे पूर्णहो अर्थात् वह सबप्रकारके ऐश्वर्यसे संपन्न चक्रवर्ती राजाहो, यह मानव सुखकी अवधिहै, इससे अधिक मानव सुख नहींहै । ऐसे सौ मनुष्योंके सौ सुखों जैसा एक आनन्द, एक एक मनुष्यगन्धर्वकोहै, अर्थात् सार्वभौम मनुष्यसे सौगुना सुख एक मनुष्य गंधर्वको होताहै । उतनाही सुख, मनुष्य गन्धर्वकी कामना रहित श्रोत्रिय नाम ब्रह्मनिष्ठकोहै । यहां श्रोत्रियनाम तत्ववेत्ताकाहै । क्योंकि अध्यायकः इस विशेषणसे अधीत वेद नाम चक्रवर्ती राजा मनुष्यका कहा जाचुकाहै । इसलिये यहां श्रोत्रिय नाम वेदवेत्ताका न होकर तत्ववेत्ताकाहै । आगे सौ मनुष्यगन्धर्वोंके सौ आनन्दोंके समान आनन्द, एक-एक देवगन्धर्वकोहै-इतनाही आनन्द, देवगन्धर्वकी कामना रहित तत्ववेत्ताकोहै । आगे सौ देवगंधर्वोंके सौ आनन्दोंके समान आनन्द, चिरकालस्थितिवाले एक एक पितरकोहै-वही आनन्द

पितृलोककी वासना रहित ब्रह्मनिष्ठकोहै । आगे सौ पितरोंके सौ आनन्दोंके सदृश आनन्द, एक एक आजानदेवताकोहै, इतनाही सुख, आजानदेवकी इच्छारहित ब्रह्मज्ञानीकोहै । आगे सैंकड़े आजानदेवताओंके सैंकड़े आनन्दोंके तुल्य आनन्द, अकेले २ कर्मदेवकोहै । जोकि कर्मसे देवताबनेहैं, उतनाही आनन्द, कर्म देवकी आशा रहित ब्रह्मवेत्ताकोहै । आगे सौ कर्मदेवताओंके सौ आनन्दोंके वराबर आनन्द, एक एक देवकोहै–उतनाही आनन्द देवपदकी वांछारहित आत्मज्ञानीकोहै । आगे सौ देवताओंके सौ आनन्दोंके समान आनन्द, अकेले इन्द्रकोहै-उतनाही आनन्द इन्द्र पदकी कामना रहित ब्रह्मवेत्ताकोहै । आगे इन्द्रसे सौगुना आनन्द, अकेले वृहस्पतिकोहै, उतनाही आनन्द, देवगुरु पदकी इच्छा रहित ब्रह्मज्ञानीकोहै । आगे देवगुरु–वृहस्पतिसे सौगुना सुख, अकेले प्रजापतिकोहै उतनाही सुख, प्रजापति पदकी वासना रहित आत्मज्ञकोहै । आगे प्रजापतिसे सौगुना अधिक आनन्द, अपरब्रह्मकोहै उतनाही आनन्द, अपरब्रह्म पदकी कामना रहित ब्रह्मनिष्ठिकोहै । यह श्रुतियोंका अर्थहै । यहांतकही सांसारिक सुखहै । इससे अधिक संसारमें आनन्द नहींहै इसके आगे इच्छा रहित निर्गुण शुद्ध सामान्य सच्चिदानन्द परब्रह्महै-जो किसीभी प्रकारकी कल्पनाका विषय नहींहै । इसीसे श्रुतिने अपरब्रह्ममें वृत्तिजन्य सुखको सीमित कियाहै–अर्थात् समाप्त कियाहै । परन्तु यह विशेष आनन्द, बाहरके किसी स्थानसे नहीं

आताहै। यह तो वाह्यपदार्थोंके प्राप्त करनेकी अभिलाषा-रजोगुणकी कामनारूप वृत्तिके, अपने इच्छितवस्तुकी प्राप्तिमें शान्तहोजानेसे सत्वगुणकी वृद्धिसे प्रत्येक जीवके अन्दरमेंही प्रकट होताहै-जोकि वास्तवमें अपनाही स्वरूपहै। इसीलिये इनके आगे की श्रुति कहतीहै-**स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः** वह जो आनन्द, इस उपासक पुरुषमेंहै और जो आनन्द, उस आदित्यस्थानी उपास्य ईश्वरमेंहै वह आनन्द दोनोंमें एकहै। यह श्रुतिका अर्थहै। यदि जीवोंमें अपना स्वरूपभूत स्वाभाविक आनन्द न होता तो ब्रह्मनिष्ठको ईश्वरकेसमान आनन्द, श्रुतियोंमें क्यों प्रतिपादन कियाजाता। अतः जीवभी आनन्द स्वरूपहीहै-यही आनन्दकी मीमांसा या विचारहै। अस्तु।

उक्त वैदिक श्रुतियोंके आधारपर जीवात्माका स्वरूप सच्चिदानन्दही है। और अपने अनुभवसेभी जीवात्माका स्वरूप सच्चिदानन्दही सिद्धहोताहै। कारण कि प्रत्येक प्राणधारी, अपरब्रह्मसे लेकर चीटी या स्तंभ पर्यन्त, अपनी वृत्तिके एकाग्रहोजानेपर, अपने अन्दरही आनन्दका अनुभव करताहैं। चाहे वह वृत्तिकी एकाग्रता किसी अभिलषित विषयकी प्राप्तिसेहै और चाहे वह वृत्ति सुषुप्तिकी आदि और अन्तिम अवस्थामें स्वाभाविकहै। यदि आप हठधर्मीलोग, श्रुतियोंके अनुसार, और अपने अनुभव सेभी सिद्ध हुए जीवात्माके सच्चिदानन्द स्वरूपको नहीं मानेंगे तो मैं आपसे यह पूछरहाहूँ इसका आप उत्तर दीजिए। क्या

आप कहसकतेहैं, जबकि एक नास्तिक मनुष्य, ईश्वर वेद तथा परलोकको न मानताहुआ किसी आस्तिक मनुष्यके साथ विराट सभामें शास्त्रार्थ करताहुआ विजयको प्राप्तकर अति हर्षित प्रसन्न और आनन्दित होरहाहै, तब वह आनन्द क्या उसको ईश्वरकी ओरसे भेजाजारहाहै। क्या आप कहसकतेहैं-जबकि दुर्योधन कर्ण और शकुनी आदि लोग, युधिष्ठरके साथ कपट द्यूतमें विजय लाभ करचुके, तब उन्हें जो अतिसंतोष प्रसन्नता या आनन्द हुआथा, तब वह आनन्द क्या उन अधर्मियोंको तुमारे ईश्वरकी ओरसे भेजागयाथा। क्या तुम कहसकतेहो कि एक मदिरापान करनेवाले मनुष्यको, मदिरापान करतेही जो मस्ति हर्ष या अति आनन्द आजाताहै, जिसकेकारण वह **"तृणवन्मन्यते जगत्"** सब संसारको घासफूंसके समान समझकर उसका अनादर करताहै, वह आनन्द क्या उसको ईश्वर भेजरहाहै। क्या आप कहसकतेहैं जबकि एक कामी पुरुष अपनी सुन्दरी साध्वी स्त्रीके होतेहुए उसका अनादरकर किसी वेश्यासे गमनकरके बहुत प्रसन्न होरहाहै, वह आनन्द क्या उसको ईश्वरनेही दिया होगा। क्या तुम कहसकतेहो जबकि एक गोघातक निरपराध गौकी हत्या करके उसका रक्त या खून सपरिवारके पीकर खुशी मना रहाहै वह खुशी क्या उसको ईश्वरने दीहै। क्या तुम कहसकतेहो, जबकि व्याध या शिकारी, अपने बाण आदि साधनों द्वारा, निरपराध जीवोंके प्राणोंको

लेकर, अपने उस निशानेकी बड़ाई करताहुआ अतिहर्षित या आनन्दित हुआकरताहै तब वह आनन्द क्या उसको ईश्वरही भेजाकरताहै । क्या तुम कह सकतेहो, जिन चोरी झूठ आदि कुकर्मोंको संसारके सभी भलेमनुष्य बुरा मानरहेहैं—उन कुकर्मोंके करनेवाले मनुष्योंको जो आनन्द प्राप्त होताहै वह क्या ईश्वरही भेजा करताहै । यदि इन ऊपरमें कहेहुए सबही कुकर्मोंके करनेवाले मनुष्योंको आनन्द ईश्वरही प्रसन्नहोकर उन्हें दिया करताहै तब फिर ईश्वरने विधिनिषेधात्मक या ऐसा करना और ऐसा न करना ऐसी शिक्षा देनेवाले वेदोंको मनुष्योंकेलिए बनायाही क्योंथा । अतः हे प्यारे भक्तजी । ऐसे कुकर्मी लोगोंको, जिन कर्मोंका दुखरूपीफल उन्हें फिर भोगना पड़ेगा उन्हीं कर्मोंका यह आनन्दरूपीफल उन्हें ईश्वरसे दिया नहीं जारहाहै ।

और लीजिए, बांसुरीकी सुरीली मीठीतान, और वीणाकी झंकार तथा अनेक प्रकारके अन्यान्य अपने अनुकूल वाद्योंको सुनते साथही मनुष्यही क्यों पशुपक्षीभी स्तब्ध और क्रियाहीन होजायाकरतेहैं, वह आनन्द क्या उन्हें ईश्वरही भेजाकरताहै । तात्पर्य यह कि आस्तिक नास्तिक पशु और पक्षी आदि प्रत्येक जीव, अपने अभिलषित शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध नामके विषयोंको प्राप्तकरके—आनन्दमग्न होजाताहै; तब वह आनन्द क्या उसे ईश्वरही भेजाकरताहै । जिन विषयोंमें जीवोंको आनन्द

आरहा था, फिर उन्हीं विषयोंमें ग्लानिकरके ये जीव उनका त्यागकरदेतेहैं-क्या वहां भी ईश्वरही अब उनसे आनन्दको छीन लियाकरताहै। परन्तु हे भक्तजी, ऐसा मानना अनुभवके सर्वथा-ही विपरीत पड़ताहै। क्योंकि जीवोंका ऐसा करना स्वाभाविक-हीहैकि एक विषयको, उसमें ग्लानिकरके छोड़देना और दूसरे विषयमें गुण बुद्धिकरके उसकी प्राप्तिसे आनन्दित होजाना-ऐसाही अनुभवमें आरहाहै।

भक्तजी। क्या आपने मांडूक्योपनिषद्की इस श्रुतिको नहीं पढ़ा-है। श्रुतिहै—"**यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तं सुषुप्तस्थान एकी-भूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः**"—जहां सोताहुआ किसी कामनाको नहीं करताहै और नाहीं किसी स्वप्नको देखताहै वह सुषुप्ति अवस्थाहै, सुषुप्ति स्थानवाला विशेषज्ञान घनीभूतहोनेसे जो एकीभूत और घनीभूतहै, आनन्द प्रधानहोनेसे जो आनन्दमय और उस एकाग्र वृत्तिकेद्वारा आनन्दको भोक्ताहै, तथा जो चेतनाका द्वारहै वह प्राज्ञ नाम जीव, आत्माका (विश्व और तैजस-की अपेक्षा) तीसरा पादहै। इस श्रुतिकेद्वारा यह बतायागयाहै कि प्रत्येक जीव, सुषुप्तिको आदि और अन्तिम अवस्थामें आनन्दको भोगताहै। इस आनन्दमयकोशमें सबकेलिए बिना

किसी प्रयत्नके आनन्दकी प्राप्ति होतीहै ।

भक्तजी । क्या आपने योगदर्शनमें समाधिपादके सूत्र १७ "वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात्संप्रज्ञात:"— इसको पढ़ा या सुना नहींहै । इस सूत्रमें आएहुए आनन्दशब्दका यह अर्थहै कि जब साधक अपनी वृत्तिको इन्द्रियोंमें या इन्द्रियोंके कारणरूपी अहंकारमें लेजाताहै तब वह आनन्दसे भरपूर हो-जाताहैं। लो भक्तजी । ईश्वरका भक्तहै या उसका भक्त नहीं-है, कोईभी मनुष्य क्यों न हो जब वह इन्द्रियों या इन्द्रियोंके कारण अहंकारमें अपनी वृत्तिको एकाग्र करेगा तब वह आनन्द-से भर जाएगा । इसप्रकार पीछे कहेगए वेदके मंत्रोंसे तथा अपने-अपने अनुभवसेभी जीवका स्वरूप सच्चिदानन्दही सिद्धहोताहै । परन्तु आपलोग, जीवके सच्चिदानन्दस्वरूपको स्वीकार नहीं करसकेंगे । क्योंकि आपकी सम्प्रदायके अनुसार, जीवको सच्चिदानन्दस्वरूप कहदेना और मानलेना अपराध मानाजाता-है । अतः आपभी संप्रदायीहोनेके नाते इस पक्षको स्वीकार नहीं करसकेंगे । आपकी इच्छा, परन्तु पक्षपातसे रहित अन्य सभी विचारशीललोग जीवका सच्चिदानन्दस्वरूप अनुभव कररहेहैं और आगे अनुभव करेंगे । जिससे कि उक्त वैदिक मंत्रोंकेद्वारा सभी जीव, विशुद्धब्रह्मसच्चिदानन्दके अंशहैं अतः ये भी सबके-सब सच्चिदानंदस्वरूपहीहैं ।

इसप्रकार वैदिक ब्रह्म विचारमें अंशांशी ब्रह्म नामवाला सातवां प्रकरण समाप्तहै ।

८ ज्ञेय ब्रह्म

त्रिपाद विशुद्धसच्चिदानन्दही ज्ञेयब्रह्महै ।

महाप्रलयकी मध्य अवस्थामें सच्चिदानंदका अनन्तरूपहोनेसे वह चतुष्पाद विशुद्धब्रह्म था । "पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि"–इसका समस्त विश्व एकपादहै और इसका तीनपाद अविनाशी अर्थात् विशुद्धहै । इस यजुर्वेदके पुरुष सूक्तके मंत्रके अनुसार, सृष्टिकालमें उसका एकपाद ईश्वर और जीवनामोंके अंशोंमें विभक्त होगया या बटगया । और वह तीनपादोंसे विशुद्धब्रह्मसच्चिदानन्दही निर्गुण और निराकारहोनेसे ज्ञेयब्रह्महै ।

जिस मनुष्यने वैदिक अग्निहोत्र आदि निष्काम कर्मोंकेद्वारा या फिर अन्य जीवोंकी निष्काम बुद्धिसे किसी प्रकारकी भलाई करनेकेद्वारा अपने अन्तःकरणके मल नामवाले दोषको दूर किया-है, मल नाम राग द्वेषकाहै । फिर उसने आदित्यात्माकी निष्काम उपासनाके करलेनेसे अपनी बुद्धिके विक्षेप नामक दोषको दूर कियाहै, विक्षेप नाम चित्तकी चंचलताकाहै । इसके अनन्तर जिसके चित्तमें आवरण नामी तीसरा दोष रहगयाहै, आवरण नाम अपने स्वरूपको न जाननेकाहै । वह मनुष्य, मुण्डक उप० के इन मंत्रोंके अनुसार कार्य करे । मुण्डक उप० मुण्डक १ खंड २ मंत्र १२।१३।

"परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमाया-न्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छे-त्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥१२॥ तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्त चित्ताय शमान्विताय । येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥१३॥ अर्थ—कर्मसे प्राप्तहोनेवाले लोकोंकी परीक्षाकरके ब्राह्मण वैराग्यको धारणकरे, अकृतः (नित्यात्मा) कृतेन (कर्मसे सिद्ध) नहीं होता, उसके ज्ञानार्थ वह श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके सम्मुख समिधाएं हाथमें लेकरजावे ॥१२॥ ऐसे समीप आएहुए एवं भलीप्रकार चित्तशांतवाले तथा वशीकृत मनवालेकेप्रति जिसप्रकारसे वह अविनाशी सत्यपुरुषको जानसके उस ब्रह्मविद्याको तत्त्वसे उपदेशकरे ॥१३॥ यह मंत्रोंका अर्थहै । व्याख्या—लो प्यारे मित्रो । मंत्रमें ब्राह्मणशब्दभी आगयाहै-जोकि जन्मसे या कर्मकेद्वारा आज विवादास्पदहै या झगड़ेका घर बनाहुआहै । क्योंकि कोई इसे जन्मसे और कोई कर्मसे बतारहा-है । परन्तु उपनिषदोंमें तथा स्मृतियोंमें तो ब्राह्मण शब्दका तीन स्थानोंमें व्यवहार हुआ देखागयाहै । जैसाकि— बृहदा० अ० ३ ब्राह्मण ८ श्रुति १० "य एतदक्षरं गार्गी विदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः"—याज्ञवल्कयने कहा हे गार्गी

जो मनुष्य, इस अविनाशी आत्माको जानकरके इस देहसे ऊपर उठजाताहै अर्थात् इस शरीरमें आत्मबुद्धिका त्यागकरके इसमें राग नहीं करताहै वह ब्राह्मणहै। इस श्रुतिमें तो ब्राह्मण शब्द ब्रह्मज्ञानीके विषयमें व्यवहृत हुआहै। भगवद्‌गीता अध्याय २ श्लोक ४६ "यावानर्थं" इसमेंभी ब्राह्मणशब्द ब्रह्मज्ञानीके लिये प्रयुक्त हुआहै। स्मृतियोंमें जहांपर ब्राह्मणकेलिए अध्ययन अध्यापन आदि छै कर्म बताएहैं वहांपर ब्राह्मण शब्द वेदवेत्ताके विषयमेंहै। परन्तु उक्त मंत्रमें ब्राह्मण नाम ब्रह्मजिज्ञासुकाहै। अर्थात् ब्रह्मकोजाननेकीइच्छावालेमनुष्यको उचितहै कि वह शुभ कर्मकेद्वारा प्राप्तहोनेवाले इसलोक और ब्रह्मलोकतकके भोगोंकी परीक्षाकरे। परीक्षा यहीहै कि सभी विषयभोग अन्तवालेहोनेसे अनित्यहैं। इसप्रकारकी विचारकरके उनमें ग्लानिकरे और उनके प्राप्तकरनेकी इच्छाको त्यागदे।

जिससेकि प्रत्येक जीव, यही चाहताहैकि मैं सदाही बनारहुं ऐसा न हो मैं कभी न रहुं, इससे आत्मा सत्‌रूपहै। कारणकि प्रत्येक जीवकी यही अभिलाषाहै कि मैं सदा ज्ञानवान् बना रहुं, ऐसा न हो कि मैं कभी अन्धतममें चलाजाऊं। इसीसे आत्मा चित्‌रूप या चैतन्यरूपहै। क्योंकि प्रत्येक जीवको यही वांछितहै कि मुझे सदैव आनन्द बनारहे और प्रत्येक जीवका आनन्द प्राप्त करनाही पुरुषार्थहै—इसीसे आत्मा या सबका

अपना आप आनन्दरूपहै । इसप्रकार प्रत्येक जीवका आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है । इसीसे प्रत्येक जीव अपने सच्चिदानन्दरूप आत्माकी ओर जारहाहै । ऐसेतो शोक मोह आदि तथा इनसे उत्पन्न होनेवाले दीनता घृणा आदि दुखरूपभी आत्माकेही विवर्तहैं । क्योंकि सच्चिदानन्द आत्मा सर्वरूपहै । तोभी ये सब जीवको अभीष्ट नहींहैं । इसीसे ये सब आत्माके वास्तविक रूप नहींहैं । ऐसेतो शब्दादि विषयोंमेंभी सत् चित् आनन्द रूपता अनुभवमें आरहीहै तोभी वह स्थायी नहींहैं किन्तु आगमापायीहै । इसीसे ब्रह्मजिज्ञासुको समस्त विषयोंसे वैराग्य होनाचाहिए । और इनके प्राप्तिकरनेकी इच्छाको त्यागदे । यह समझे कि आत्मा तो अकृतहै अर्थात् नित्यहोनेसे किसी कर्मका फल नहींहै । तो फिर कर्म करनेसे इसे क्या लाभ होगा । क्योंकि कर्मका उपयोग चारही प्रकारकाहै । किसी वस्तुकी उत्पत्ति करना तथा किसी वस्तुको प्राप्त करना एवं किसी वस्तुको शुद्ध करना और किसी वस्तुको बदल देना, ऐसे चार प्रकारकाही कर्मका फल होताहै । परन्तु ब्रह्मात्मा तो नित्यहै, अतः इसकी उत्पत्तिकरनी नहीं बनतीहै । और यह अपनाही स्वरूपहै, इससे इसको प्राप्तकरनाभी नहीं बनेगा तथा यह वास्तवमें शुद्धहै अतः इसका संस्कार करनाभी नहीं बनेगा एवं यह निर्विकारहै, अतः इसमें परिवर्तनभी कुछ नहीं किया जासकेगा । इसलिए इसमें किसी कर्मकी सहायता लेनी नहीं बनतीहै ।

इसका तो केवल जाननाही बनताहै । इसलिये जिज्ञासुको चाहिये कि वह आत्माकी जिज्ञासासे, श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप-जाए । वेद शास्त्रोंके अध्ययन करनेवालेका नाम श्रोत्रियहै । अतः गुरु श्रोत्रिय होनाचाहिये । ऐसा गुरु न हो जोकि विवेक विराग वेदान्त और सिद्धान्तके स्थानमें, ववेक बराग वदान्त और सधांत ऐसे अशुद्धशब्द उच्चारण करनेवालाहै । देखोजी, वह शम आदि ज्ञानके साधनोंसे सम्पन्नहोकर ज्ञानप्राप्तिके-द्वारा अपनी तो कल्याण करसकताहै । परन्तु यदि शिष्य तर्कशील और बुद्धिमानहै तो वह उसके प्रश्नोंका उत्तर देनेमें असमर्थहै । देखोजी, किसी व्यक्तिने केवल अपनेलिएही भोजन बनायाहै—वहां फिर आपभी चौकेमें विराजमान होजाएंगे तब तो उसको लज्जितही होना पड़ेगा, ऐसा क्यों करनाहै । अतः श्रोत्रिय गुरुके पास जाना चाहिये । गुरुका दूसरा विशेषणहै ब्रह्मनिष्ठ, अतः वह ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् ब्रह्ममें निष्ठा नाम स्थितिवाला होनाचाहिये । यदि गुरु ब्रह्मनिष्ठ न होकर केवल श्रोत्रियहै तबतो शिष्यको उससे शिष्टाचार प्राप्त नहीं होसकेगा । क्योंकि उसने तो विद्याको विवेकचूड़ामणि पुस्तकके—

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यान कौशलम् ।
वैदुष्यं विदुषां तद्वत् भुक्तये न तु मुक्तये ॥६०॥

इस श्लोकके अनुसार, भोगोंपरही समाप्त करदियाहै । श्लोकका

अर्थ यहहैकि उच्चस्वरसे शब्दोंकी झड़ी लगादेना तथा शास्त्रों के व्याख्यानमें अत्यन्तही कुशलहोना अर्थात् एकही श्लोकका कई दिनतक व्याख्यान करतेरहना—ऐसेही विद्वानोंके बीचमें अपनी विद्वत्ता दिखाना यानी शास्त्रार्थमें सबको परास्त करदेना, यह सब कुछ भोगकेलिएहीहै, मुक्तिकेलिए नहींहै, अर्थात् मनुष्य यदि ब्रह्मनिष्ठ नहींहै तो यह विद्या भोगोंकेलिएही है—इसका मोक्षके साथ कुछभी सम्बन्ध नहींहै। अतः गुरु ब्रह्म-निष्ठ होनाचाहिये। देखोजी।

अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाखिल भूश्रियम्।
राजाहमिति शब्दान्नो राजा भवितुमर्हति ॥६६॥

विवेक० के इस श्लोकद्वारा, जिस मनुष्यने शत्रुका विनाश नहीं कियाहै और सम्पूर्ण राज्यलक्ष्मीको प्राप्त नहीं कियाहै—वह मनुष्य अपनेको मैं राजाहूँ ऐसा कहनेसे वह राजा नहीं होसकताहै।

अकृत्वा दृश्यविलयमज्ञात्वा तत्त्वमात्मनः।
वाह्यशब्दैः कुतो मुक्तिरुक्तिमात्र फलैर्नृणाम् ॥६५॥

ऐसेही। जिन्होंने दृश्यका विलय नहीं किया अर्थात् जिनके मनमें शत्रु मित्र मान अपमान स्तुति निन्दा हर्ष और शोक आदि, पत्थरमें रेखाके समान स्थायी होकर रहतेहैं और आत्माके वास्त-विक स्वरूपको अनुभव नहीं कियाहै ऐसे मनुष्योंकी "अहं-ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूँ ऐसे वाचकमात्र शब्दोंके कथनसे मुक्ति कैसे

होसकतीहै उन शब्दोंका तो केवल कथनमात्रही फलहै अर्थात् ऐसे शब्दोंका मुक्ति रूपी फल नहींहै। अतः गुरु केवल श्रोत्रियही नहीं किन्तु ब्रह्मनिष्ठभी होनाचाहिये।

गीतामें ब्रह्मनिष्ठकोही स्थितप्रज्ञके नामसे पुकारागयाहै। अतः उसमेंसेभी ब्रह्मनिष्ठके लक्षणोंको अवश्य जान लेनाचाहिये। भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ५६ दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः" इसके अनुसार जो मनुष्य, शरीरमेंही उत्पन्न होनेवाले ज्वर आदि अध्यात्म दुःख तथा बाहरसे आनेवाले सर्प चोर आदिकेद्वारा अधिभूत कष्ट एवं बाहरसेही आनेवाले अतिवृष्टि और अनावृष्टि आदि अधिदैव दुःख इन तीनों प्रकारके दुःखोंके प्राप्तहोनेपर हाय हाय नहीं करताहै और तीनों प्रकारके सुखोंको प्राप्त करनेकी जिसकी इच्छा नहींहै—अर्थात् जो दुःख और सुखकी प्राप्तिमें समान बुद्धिवालाहै एवं राग भय और क्रोधसे रहितहै ऐसे वास्तविक मुनिको लोग, स्थितप्रज्ञ या ब्रह्मनिष्ठ कहतेहैं। गीताजी सर्वत्र प्रसिद्धहीहै, अतः इसके श्लोकोंको यहां प्रतीक रूपसे दियागयाहै और दियाजायेगा। देखोजी, ब्रह्मनिष्ठका उक्त यह लक्षण, स्वसंवेद्य यानी अपनेसेही अपने आपको जानना नहींहै, किन्तु यह लक्षण परसंवेद्य यानी दूसरों करके जाननेके योग्यहै। इसके अनुसार यदि श्लोकमें कहागया ब्रह्मनिष्ठका लक्षण उसमें पायाजाताहै तबतो वह ब्रह्मनिष्ठहै, अन्यथा वह ब्रह्मनिष्ठ नहींहै। अतः शिष्यको उसकी भलीभांति परीक्षा

करलेनी चाहिये ।

गीता अध्याय १३ श्लोक ७ " अमानित्वम् "—इसके अनुसार, ब्रह्मनिष्ठको मानसे यानी अपनेमें उत्कृष्ट बुद्धिकरना इससे रहित होनाचाहिये । देखोजी, यह मानही बहुत बड़ा संक्रामक रोगहै, इससे पार पाजाना अत्यन्तही कठिन कामहै। इस मानकी प्राप्तिके लिए कोई मनुष्य तो विद्याको पढ़ताहै । कोई मौन धारणकरताहै कोई अन्नको त्यागदेताहै। कोई अग्निसे तपताहै। कोई जलधारा करताहै । कोई चान्द्रायणव्रत आदि करताहै। कोई खड़ाहो रहताहै। कोई नाचताहै। कोई गाता ही है कोई व्याख्यानही करताहै। इसप्रकारके अन्य कई साधनों— द्वारा मान प्राप्त करताहै, तथा अन्य कोई व्यक्ति, किसीकी इसप्रकारके साधनोंद्वारा मान प्राप्ति देखकर आपभी वैसे साधन करनेलगताहै। इसप्रकार यह मान बहुत बड़ा संक्रामक रोग यानी छूतकीबीमारीहै। अतः ऐसा मान ब्रह्मनिष्ठमें नहीं होनाचाहिये। दंभ नाम इसकाहै कि जो वस्तु किसी व्यक्तिमें वास्तवमें नहींहै, परन्तु वह बाहरी ढौंगसे उसे बनाकर दिखाता— है। जैसाकि आज बुद्धिहीनलोग, ऊटपटांग गालियां बकनेवाले व्यक्तिको सिद्धहै ऐसा कहनेलगजातेहैं, परन्तु सिद्धि उसमें सर्वथाही नहीं होताहै। लोग, केवल अपनीही अन्धश्रद्धासे उसे सिद्धबना देतेहैं। इसप्रकार कोई दंभ या ब्रह्मनिष्ठाका दंभ ब्रह्मज्ञानीमें नहीं होनाचाहिये। स्वार्थकेलिये मन वाणी तथा

शरीरसे किसीको पीड़ा न दे ऐसा अहिंसक तथा सहनशील और सरलस्वभाव होनाचाहिये। अपने ज्ञानोपदेष्टा गुरुका भक्त हो। ऐसा न हो कि वह कहीं ब्रह्मनिष्ठाके अभिमानमें आकर गुरुको-भी सर्वसाधारण मनुष्योंकी भान्ति समझने लगे या गुरुकोभी मिथ्या बतानेवाला बनजाए। अतः वह ब्रह्मनिष्ठ, गुरुभक्त होनाचाहिये। तथा वह जल मृतिका आदिसे शरीरकोभी साफ शुद्ध रखनेवालाहो, और स्थिरतावालाहो, अर्थात् धैर्यवान होना-चाहिये। और वह मनके निरोधवालाहो। देखोजी, आज देखनेमें और सुननेमेंभी बहुधा आरहाहै कि बड़े बड़े लेखक, बड़े बड़े व्याख्यानदाता और प्रसिद्ध योगी तथा ज्ञानयोगिभी प्रायःसर्व संमान्य होतेहुएभी एकांतमें बैठकर मनकी चंचलतासे दुखी होकर उसकी स्थिरताकेलिए रोया करतेहैं। अतः ब्रह्मनिष्ठका आत्मविनिग्रही होना आवश्यकहै। यदि ऐसा नहींहै तवतो दृढ़ विश्वास करोकि इसने ईश्वरकी उपासनाकरके मनके विक्षेपकी निवृत्ति नहीं कीहै।

श्लोक ८ "इन्द्रियार्थेषुवैराग्यम्" इसके अनुसार, ब्रह्म-निष्ठकी इंद्रियोंके शब्द स्पर्श रूप रस और गंध नामके विषयोंमें विरक्ति होनीचाहिए; किसीभी शब्द आदि विषयके वशीभूत नहीं होनाचाहिये; और उसमें अहंकार होना नहींचाहिये। देखोजी वर्तमानमें अपनेको ब्रह्मनिष्ठ माननेवाले लोग, किसी व्यक्तिके प्रणाम न करनेपर या बिना कुछ भेंट चढ़ाए कोई प्रश्न करदेने-

पर लाल नेत्र तथा मूर्तिमान क्रोधके रूपमें बन वैठतेहैं । वे समझतेहैं कि "कोऽन्योस्ति सदृशो मया" मेरे समान दूसरा कौनहै—इस राक्षसी ज्ञानकेकारण अपनेको प्रणाम करने- वाले व्यक्तिकी सदा प्रतीक्षा कियाकरतेहैं। उनका ऐसा आसुरी ब्रह्मज्ञान, उनकी ब्रह्मनिष्ठाका द्योतक या जितलानेवाला नहींहै। इसलिए उसमें अहंकार होना नहीं चाहिये। और उसको जन्ममें मृत्युमें जरामें तथा व्याधिमें अनेक प्रकारके दुःख और दोष देखते रहनाचाहिए। अर्थात् वह ऐसाही करताहै।

श्लोक ६ "असक्तिरनभिष्वंग:"—इसके अनुसार ब्रह्मनिष्ठ का, पुत्र दारा या स्त्री गृह आदि किसीभी वस्तुमें राग या लगाव नहीं होनाचाहिये। देखोजी, कोई २ वेषधारी संन्यासीभी वर्तमानमें अपने कुटुम्बकी चिंतामें मग्नहैं और अपने पुत्र आदि परिवारकेलिए सम्पत्ति बनाचुकेहैं और बनारहेहै। ब्रह्मनिष्ठ तो दूर रहा वह तो संन्यासीही नहीं रहाहै—जिसका अपने परिवारमें राग या मोह होगयाहै। अपनेको ब्रह्मनिष्ठ माननेवाले अन्य कई संन्यासी, मठ और मकान बनारहेहैं। परंतु उनका ऐसा करना सभी धर्मशास्त्रोंके विपरीत कर्महै। क्योंकि सभी धर्मशास्त्रोंमें, कुटीचक बहूदक हंस और परमहंस नामके चारों संन्यासियोंमें केवल "पुत्रान्नजीवी कुटीचक:" —पुत्रके अन्न पर निर्वाह करने- वाला जो कुटीचक संन्यासीहै—उसीकेलिए अपने ग्रामके बाहर कुटिया बनाकर एकत्रवास करनेका उल्लेखहै, परंतु अन्य

किसीभी संन्यासीकेलिए बिना चातुर्मास्यके एकस्थानमें रहनेकी आज्ञा नहींहै । जोकि अपने या अपने शिष्योंकेलिए मठ मकान बनानाहै यह उनपर उपकार करना नहींहै, किंतु उनका अपकार करनाहै। उनके साथ अन्याय करनाहै । उन मुमुक्षुओंको भोगी बनाकर मोक्षसे दूर करनाहै । समयके अनुसार यदि ऐसाही मानलियाजाए कि धर्म प्रचारकेलिए मठ मकानोंका होना आवश्यकहै—जिनमें संन्यासी लोग निवासकरें, तोभी यह सब कुछ गृहस्थियोंद्वाराही होनाचाहिये, संन्यासियोंकेद्वारा नहीं। क्योंकि धर्मशास्त्रोंमें संन्यासीको किसीभी मठ और क्षेत्र आदिका प्रबंधक होना वर्जितहै । दूसरी बात यह है कि उनको न्यायालयोंमें तुच्छसे तुच्छ न्यायाधीशोंकी शरणमें जाना पड़ताहै-जोकि अपनेको स्वामी माननेवाले संन्यासियोंकेलिए वह लज्जाका कारण एवं महापापका फलहै । वर्तमानमें, उदासी नाथ वैरागी आदि नामवाले सभी संप्रदायोंके विरक्तिका वेष धारण करनेवालेलोग, संन्यास आश्रममेंही मानने पड़ेंगे। क्योंकि मनुस्मृति आदि सभी धर्मशास्त्रोंमें, ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास, इन चारों आश्रमोंसे भिन्न, न तो कोई उदासीन आदि नामवाला पांचवां आश्रमही लिखागयाहै और न उनके लिए किसी कर्तव्याकर्तव्यकाही वर्णन पाया गयाहै । अतः ये सब लोग, संन्यास, आश्रमकेही अन्तर्गतहैं। इससे किसी प्रकार के भी ब्रह्मनिष्ठ संन्यासीका तथा वानप्रस्थका पुत्र और गृह

आदिमें राग नहीं होनाचाहिये। यदि ब्रह्मनिष्ठ गृहस्थीहै तो उसकेलिए पुत्र आदिकोंका त्याग संभव नहींहै, परन्तु उसका पुत्र आदिमें अन्तःकरणसे राग नहीं होनाचाहिये । ब्रह्मनिष्ठको इच्छित वस्तुकी प्राप्तिमें और अनिष्ट वस्तुमें समचित्तवाला होनाचाहिये। अर्थात् ज्ञेयके आधीन ज्ञान होताहीहै, अतः क्षणभंगकेलिए हर्ष शोक होना चाहिये।

श्लोक १० "मयि च" —ब्रह्मनिष्ठकी ईश्वरमें दृढ़ अभेद भक्ति और बाहरसे उसमें दास बुद्धि होनीचाहिये। देखोजी, वर्तमानमें, अपनेको ब्रह्मनिष्ठ बतानेवाले मिथ्याभाषी तथा लेखोंद्वारा और भाषणोंद्वारा रुपया बटोरनेवालेलोग, निःस्वार्थ परमदयालु ईश्वरकोभी मिथ्या बताने लगतेहैं, परन्तु यह कृतघ्नताहै, अतः उसे ईश्वर भक्त होनाचाहिए। ब्रह्मनिष्ठको एकांत सेवी होनाचाहिए। तथा जनसंसदि नाम मेलेमें अरुचि होनीचाहिये। देखोजी, वर्तमानमें, गृहस्थीही क्यों अपनेको ब्रह्मनिष्ठ बतानेवाले संन्यासी लोगोंकाभी मन, मेलेसे बिना नहीं लगताहै—इसीसे ये लोग किसी न किसी प्रकारसे मेला बना रहेहैं—इससे दृढ़ विश्वास करलेनाचाहिए कि ऐसे लोगोंने ईश्वर भक्ति नहीं कीहै। इसीसे इनको ब्रह्मानन्दका अनुभव नहीं हुआहै। अतः ये लोग, अपना मन बहलानेको मेला बुलारहेहैं, परन्तु ब्रह्मनिष्ठको मेला एकत्र करनेकेलिए अपने आप कोई साधन नहीं बनानाचाहिये।

श्लोक ११ "अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम्०" इसके अनुसार ब्रह्मनिष्ठको, निदिध्यासनशील और आत्मसाक्षात्कारसे सम्पन्न होना चाहिये। ये ज्ञानके साधन कहेगएहैं और जो इनके विपरीत हैं वे अज्ञानके साधनहैं। देखोजी, आजकोई व्यक्ति, जिस श्लोक या मंत्रको बड़े परिश्रमके साथ रट रहाहै वही श्लोक या कोई मंत्र आदि कुछभी क्यों न हो, कुछदिनोंकेबाद उसके कंठस्थ होजाता-है, फिर वह उसके मुखसे स्वाभाविकही निकलने लगताहै उसे कुछभी परिश्रम नहीं करना पड़ताहै, यह दृष्टांत प्रत्येक कामके-लिए समझना चाहिए। इसीप्रकार जिन अमानित्व या शम आदि साधनोंको साधक या जिज्ञासु आज, बड़े यत्नसे कष्ट उठा-कर कररहाहै वे ही शमदम आदि साधन कुछ दिनोंके अनन्तर उसीके लक्षण बनजातेहैं और वही साधक उनसे सिद्ध या ब्रह्म-निष्ठ कहाजताहै। अतः ये सब साधन, जिज्ञासुको ब्रह्मनिष्ठ होनेके लिए अवश्य करनेचाहिए। देखोजी, यह कोई अमरीकाका इंजनीयर तो नहींहै जोकि भारतमें बिजली फिटकरनेकेलिए बुलाया जाएगा। यह तो यहांकाही जिज्ञासुहै जोकि शम आदि साधनोंको करताहुआ किसीदिन ब्रह्मनिष्ठ बनजावेगा। अतः इस-प्रकारके लक्षण ब्रह्मनिष्ठमें अवश्य होतेहैं और होने चाहिए। यहीब्रह्मनिष्ठ या ब्रह्मज्ञानीकी पहचानहै।

ब्रह्मज्ञानी निषिद्ध आचरण नहीं करता। क्योंकि पंचदशीके द्वैत विवेक प्रकरणमें श्लोक ५५ में ऐसा कहाहै—

बुद्धाद्वैतस्वतत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि ।
शुनां तत्त्वदृशां चैव को भेदोऽशुचिभक्षणे ॥

अद्वैत स्वरूपब्रह्मको जाननेवाले ज्ञानीका यदि यथेष्टाचरण या मनमाना आचरण होगा, तो वह अशुचिपदार्थोंकाभी सेवन करने लगेगा, ऐसा होनेपर कुत्तोंकी और तत्त्वज्ञानियोंकी कोई विशेषता नहीं रहेगी अर्थात् ऐसे तत्त्वज्ञानियोंको कुत्तोंके समान समझना चाहिए । ग्रन्थोंमें जहां कहींपर ज्ञानीको निषिद्धाचरणमें अवकाश दियाहै वहांपर वे वचन, केवल ज्ञानकी प्रशंसाकेलिये कहेगयेहैं, किंतु वर्तावकेलिये नहीं हैं । यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो उन्हीं ग्रन्थोंमें "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः' जैसा जैसा आचरण बड़ा मनुष्य करताहै वैसा २ ही आचरण छोटा मनुष्यभी करताहै इसप्रकारके कहेहुए सब वाक्य, शिष्टाचारके आदर्शरूप मनुष्यके अभावमें व्यर्थ होजावेंगे । इसलिए ज्ञानीका भ्रष्ट आचारण नहीं होताहै। इसप्रकार यह श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुका लक्षण कहागयाहैं । उक्त मंत्रमें जो "समित्पाणिः" ऐसा वाक्य आयाहै उसका अर्थहै कि जब जिज्ञासु, श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जावे तो उसके हाथमें समित् अर्थात् पलाशवृक्षकी सूखीहुई छोटी छोटी लकड़ियां होनीचाहिएं । क्योंकि वे समिधाएं गुरुजीके अग्निहोत्र कर्मकेलिए काम आवेंगी । देखोजी, उपनिषदोंमें जहां तहां शिष्यकेलिए "समित्पाणिः" ऐसाही वाक्य

प्रयुक्त हुआहै- इससे ज्ञात होताहै कि पूर्वसमयमें ब्रह्मविद्याके आचार्य, अग्निहोत्री गृहस्थीही हुआ करतेथे । संन्यासियोंका कोईभी नियत स्थान न होनेसे उनके गुरु बनानेमें उपनिषदों तथा स्मृतियों तथा असांप्रदायिक पुराणोंमें कोई ऐसी समित्पाणिः जैसी अन्य कोई विधि नहीं पाईगई है । पुराणोंमें जहां कहींपर, जड़भरत आदिकेद्वारा किसीको ज्ञानदेनेकी चर्चा आईहै-वहांपर कोई विधि नहीं देखीगईहै । उन्होंने केवल चलते फिरतेही जिस किसीको ज्ञानोपदेश करदियाहै-। "समित्पाणिः" वाक्यका यहभी अभिप्रायहै कि पूर्वकालमें ब्रह्मविद्याके गुरुलोगोंका, विद्या प्रदान करना व्यापार नहीं था- वे उसके द्वारा अपना जीवनयापन नहीं किया करतेथे । वे तो स्वधर्मसे न्यायोपार्जित धनकेद्वारा अपना जीवन निर्बाह किया करतेथे। वे बिनाही किसी अपने स्वार्थके अधिकारीको ज्ञानोपदेश दिया करतेथे। राजा जनकने याज्ञवल्क्यकेद्वारा अपने प्रश्नोंका उत्तर सुनकरके अतिहर्षित तथा तृप्त होतेहुए गद् गद् वाणीसे उनको कहाकि हे भगवन्, आप इस राज्यको संभालो और मैं आपकी सेवा दासबनकर करूंगा । ऐसा सुनतेही याज्ञवल्क्यने कहा कि नहीं ऐसा नहीं होसकता । ब्रह्मज्ञानका विक्रय नहीं होता । इसके प्रतीकारमें मैं आपसे कुछभी नहीं लूँगा । क्योंकि याज्ञवल्क्यजी वास्तवमेंही ब्रह्मनिष्ठ थे । यह आख्यायिका बृहदा० उपनिषद्-मेंहै । दूसरी बात यह कि नाहीं ऐसा धर्मशास्त्रोंमें कहींपर देखने

में आयाहै कि ब्रह्मज्ञानके उपदेशद्वारा किसी गुरुने किसी शिष्य-का सर्वस्व लेलियाहो। परन्तु अबतो कोई व्यक्ति, अग्निहोत्री ब्रह्मनिष्ठ गुरुही नहींहै, यदि अग्निहोत्रीहै तो वह ब्रह्मनिष्ठ नहीं-है। प्रायः ऐसा कोई व्यक्ति देखनेमें नहीं आरहाहै। कोई एक होगा। अतः अब समिधाएं किसके पास लेजाए। इससे गुरु-की शरणमें जानेवाला जिज्ञासु, कुछ न कुछ पत्र पुष्प फल आदि अपनी योग्यताके अनुसार हाथमें लेकर जाए किन्तु खाली हाथ नहीं जावे। देखोजी, गुरुसे किसी ग्रामका मार्ग का रेल गाड़ीका टायम या किसी व्यापार आदिका प्रकार तो पूछने नहीं जानाहै। उससे यो अमूल्य निधि ब्रह्मविद्याको ग्रहण करना है-इससे रिक्त हाथ या खाली हाथ जाना उसके पास उचित नहींहै। मेरेद्वारा लिखोहुई यह वैदिकब्रह्म विचार नामकी पुस्तक आपको ज्ञानदेनेमें बहुत सहायक बनेगी, तोभी पुस्तकें मृतगुरु-होतीहैं इनसे मनवांछित समाधान नहीं मिलता। इसलिए ज्ञान-को जीवित गुरुकी शरणमें जाकरही ग्रहण करनाचाहिए। ऐसी ही प्रणाली देवताओं ऋषियों और मनुष्योंमें उपनिषदोंद्वारा देखीगईहै। "समित्पाणिः" वाक्यका अर्थ होचुका। मंत्रमें "तस्मै" इस पदसे कहागया ब्रह्मनिष्ठ विद्वान्का जो शिष्यके प्रति कर्तव्य, अब उसपर ध्यान देनाचाहिए। विद्वानको चाहिए कि वह उसके प्रति नहीं, जोकि दूरसेही पत्र व्यवहारकेद्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहताहै, किन्तु उस शिष्यके प्रति, जो शिष्य

पासमें आयाहुआहै। तथा उसके प्रति नहीं, जोकि भलीप्रकारसे शान्त चित्तवाला नहीं, परन्तु उस शिष्यके प्रति जोकि पूर्णरीतिसे शांत मनवालाहै। और उसके प्रति नहीं, जोकि नाना प्रकारकी पुत्र या धन आदिकी प्राप्तिरूप कामनाएं मनमें रखतेहुए अपनी शरणमें आयाहै। पर उस शिष्यके प्रति, जोकि इस लोक और स्वर्गलोक तथा ब्रह्मलोकके भोगोंकी इच्छावाला नहींहै अर्थात् जोकि विवेक वैराग्य शम आदि साधन संपत्ति और मुमुक्षुता इन चारों ज्ञानके साधनोंसे युक्तहै। उस शिष्यके प्रति ब्रह्मविद्याको वास्तविकतासे कहना चाहिए, जिस विद्यासे वह अविनाशी सत्यपुरुष परमात्माको जानले। इस प्रकार इन उक्त मुण्डक० के २ मंत्रोंकी व्याख्या होचुकीहै। परन्तु वास्तवमें देखाजाए तो व्याख्या नहीं हुईहै। क्योंकि अभीतो ब्रह्मविद्या का आरम्भ गुरुकेद्वारा किया जाएगा, उसका प्रारम्भ इसप्रकारहै। एकपाद सगुणब्रह्ममें तो जिज्ञासु बैठाही हुआहै। अब इसने त्रिपाद विशुद्ध निर्गुणब्रह्म ज्ञेयके साथ अभेद लाभ करनाहै। जिससे कि वह सत्यज्ञानानन्द, उपास्य तथा प्राप्य ब्रह्म न होकर ज्ञेयब्रह्महै—इससे उसकी उपासना और प्राप्ति सम्भव नहींहै। अतः उसका तो केवल ज्ञान या जाननाही बनताहै। उसका ज्ञान विचारकेद्वारही होसकताहै। अतः वह विचार गुरुकेद्वारा आरम्भ कीजातीहै। तैतरीय० में ब्रह्मानन्दवल्लीके आठवें अनुवाकमें श्रुति—"स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स

एकः"—वह जो इस पुरुषमेंहै और जो उस आदित्यमेंहै वह दोनोंमें एकहै। तैतरीय० में भृगुवल्लीके दश अनुवाकमें श्रुति—"स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः" वह जो इस पुरुषमेंहै और जो उस आदित्यमेंहै वह दोनोंमें एकहै। यह श्रुतियोंका अर्थहै। इन श्रुतियोंमें यह बतायागयाहैकि जो सत्यज्ञानानन्द ब्रह्म, इस उपासक जीवमेंहै, वही वस्तु उस आदित्य उपास्य देवमेंहै। अब विशेषरूपसे देखनाहै कि इस पुरुषमें क्याहै और उस आदित्यमें क्याहै।

जो सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणसे आवृतहै वह, मलिन सत्वगुणप्रधान कहलाताहै—मलिन सत्वगुणप्रधान बुद्धिवृत्तिके सहित सच्चिदानन्दका नाम जीवहै। यह पुण्यपापका करता तथा उसके फलरूप सुखदुख का भोक्ता और अल्पज्ञ आदि धर्मोंवालाहै। इतनी सामग्रीतो अयं पदके वाच्य पुरुषनामी जीवमेंहै। जो सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणको आप आवृतकरले वह सत्वगुण, शुद्ध सत्वगुणप्रधान होताहै। शुद्ध सत्वगुणप्रधान-मायावृत्ति के सहित सच्चिदानन्दका नाम ईश्वरहै। वह आकाश आदि पांच स्थूलभूतोंकी सृष्टि करनेवाला सर्वज्ञ सर्वशक्तिमत्ता आदि धर्मोंवालाहै। इतनी सामग्री असौपदके वाच्य आदित्य नामी ईश्वरमेंहै।

ऊपरमें कहीगई दोनों श्रुतियोंने जो इस पुरुषमेंहै और जो उस आदित्यमेंहै वह एकहै—ऐसा कहतेहुए जीव और ईश्वर इन दोनों-

की एकता प्रतिपादनकीहै। परन्तु जो शुद्ध सत्वमयी इच्छा तथा प्रचंड प्रकाशमयरूप, सर्वज्ञ सर्वशक्तिमत्ता आदि धर्म आदित्य-ब्रह्म ईश्वरमेंहैं वे ही धर्म क्या मलिनसत्वगुणप्रधान त्वकमांसास्थिमयशरीरि अल्पदृष्टि अल्पज्ञ तथा सामान्यशक्ति आदि धर्म-वाले पुरुष नामी जीवमेंहैं। जीवमें तो ईश्वरके उक्त ये धर्म नहींहैं। यह तो प्रत्यक्षमें विरोधहै तब फिर इन परस्पर बिरोधि धर्मवालोंकी एकता कैसे होसकतीहै। श्रुतियां इनकी एकता कथन करतीहैं। परन्तु विरोधि धर्मवालेहोनेसे इन दोनोंकी एकता बनती नहींहै। इन श्रुतियोंको चरितार्थ करनेकेलिये यहां भागत्याग-लक्षणाको स्वीकार करनाचाहिए। दोनों भागोंमेंसे विरोधि एक २ भागके त्यागदेनेका नाम भागत्यागलक्षणा कहीजातीहै। उसका उदाहरण इसप्रकार समझना चाहिए। जैसे किसी मनुष्यने किसी व्यक्तिसे कहाकि वह जो कुछ इस द्वारपालमेंहै और जो कुछ उस राजामेंहै वह एकहै। उस सत्यवक्ताके मुखसे ऐसा सुनतेही वह व्यक्ति भ्रममें पड़गया। उसने विचार किया कि इस द्वारपालमें वह राज्यशक्ति कहांहै। राजा तो जोभी चाहे वही करसताहै। यह उसका दासहै उसकी समतामें यह नहीं होसकताहै। ऐसा विचारकर उसने कहाकि भगवन्, मेरी बुद्धिमें द्वारपाल और राजाकी एकता नहीं बैठतीहै। तब उस सत्यवक्ताने कहाकि द्वारपालभी मनुष्यहै और राजाभी मनुष्य-है। अबतो इनकी एकतामें कुछ अन्तर नहींहै। जिज्ञासुने फिर

उससे कहाकि इससेभी इनकी एकता नहीं बनतीहै । क्योंकि यह द्वारपालहीहै । सबलोग, इसे द्वारपालही पुकारा करतेहैं, मनुष्य तो इसे कोईभी नहीं कहरहाहै । राजाकोभी सभी लोग राजाही कहतेहैं उसे मनुष्य तो कोईभी नहीं कहरहाहै । इसीलिए इनकी यह एकता गौणीसी एकताहै, परन्तु यह इनकी एकता कीमतवाली मुख्यएकता नहींहै । तब उस दयालु मनुष्यने कहाकि यूं करो—इन दोनोंमें जोभी अंश इनकी एकताके विरोधि-हैं उन भागोंको त्यागदो । तात्पर्य यहहै कि **राज्यं नरेन्द्रस्य भटस्य खेटकस्तयोरपोहे न भटो न राजा ।** विवेक चूड़ामणिके इस श्लोकानुसार, द्वारपालमेंसे उसके वेषको और खड़्ग आदि शस्त्रोंको उससे अलग करदो, उसका एकभाग मनुष्यशरीर रहने दो, ऐसेही राजामेंसे उसकी छत्र चामर आदि राज्यसामग्री अलग कीजाए और एकभाग उसका मनुष्यशरीर रखाजाए तब तो वह राजा और वह द्वारपाल नहीं कहाजाएगा । तबतो मनुष्यत्वमें उनकी एकतामें कोई बाधा नहीं रहेगी । तब जिज्ञासुने मानलिया कि यह इनकी निरुपाधि एकता वास्तवमेंही मुख्य एकताहै । गुरुने कहाकि इसीका नाम भागत्यागलक्षणा-है । श्रुतियोंने इसी लक्षणावृत्तिकेद्वारा जीव और ईश्वर इन दोनों की एकता, दोनोंमेंसे विरोधि भागोंका निषेधकरकेही वतलाईहै । वृहदारण्यक० अध्याय २ ब्राह्मण ३ "**द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च**" ब्रह्मके दो रूपहैं; एक मूर्तहै और दूसरा

अमूर्तहै। इसके आगे श्रुतिने तेज जल और पृथ्वी इनको मूर्त बतायाहै तथा आकाश और वायुको अमूर्त बतायाहै । मूर्तका सार **"य एष तपति"** जो यह तपनेवाला सूर्यमण्डलहै और अमूर्तका सार **"य एष एतस्मिन्मंडले पुरुषः"**—जो यह इस मण्डलमें पुरुषहै ऐसा कहाहै। यह देवतामें ब्रह्मका रूप कहाहै। **"अथाध्यात्मं"**–अब अध्यात्म कहाजाताहै कि मूर्तका सार यह जो पुरुषका दाहिना नेत्रहै और अमूर्त का सार **"योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषः"**—जो यह दाहिने नेत्रमें पुरुषहै। यह श्रुतियोंका अर्थहै। इसप्रकार ब्रह्मका सर्वसाधारण जीवोंमें मनुष्यरूप सबसे उत्तमहै, तथा ब्रह्मकाही उच्चकोटिके ब्रह्मा विष्णु तथा शिव आदि देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ सबसे बड़ा सबिता या सूर्यरूपहै। सच्चिदानन्द ब्रह्मके ये ही दोनों रूप, ईश्वर और जीवके नामसे व्यवहृत होतेहैं या कहे जातेहैं। तात्पर्य यहकि एकपाद विशुद्धसच्चिदानन्दब्रह्मके, ब्रह्म अन्तर्यामी अपरब्रह्म और वैश्वानर ये चारोंपाद सूर्यदेवता विषयकहोनेसे अधिदैव कहेजातेहैं। क्योंकि ब्रह्मका देवताओंमें सबसे बड़ा सूर्यशरीरहीहै। उसी ब्रह्मके, आत्मा प्राज्ञ तैजस और विश्व ये चारोंपाद मनुष्यशरीर विषयकहोनेसे अध्यात्म कहेजातेहैं। क्योंकि ब्रह्मका अध्यात्माओंमें कर्मयोनिहोनेसे सबसे उत्तम मनुष्य शरीरहै ।

जिससे कि सच्चिदानन्दब्रह्मके ये दोनोंरूप, महाप्रलयमें नहीं रहतेहैं—वहां एक वही रहताहै, इसीसे ये दोनोंरूप उसके वास्तविकरूप नहींहैं। इसीलिए ब्रह्मके इन मायामय तथा त्रिगुणात्मक दोनों रूपोंका श्रुतियोंद्वारा निषेध कियागयाहै। ऊपरमें पांच श्रुतियोंका सारभूत अर्थ कियागयाहै। उनके आगेकी छठी श्रुति यहहै—"**अथात आदेशो नेति नेति नह्येतस्मादिति नेत्यन्यत्परमस्ति**"—इस श्रुतिका अर्थ यहहैजिससेकि सच्चिदानन्दब्रह्मके ये दोनोंरूप वास्तविक रूप नहीं हैं "अतः" इसीकारणसे, "अथ-अब" नेति नेति" यह नहीं यह नहीं, ऐसा "आदेश" उपदेशहै-एवं यह भी नहीं तथा इससे और कुछ भिन्नभी नहींहै। इस श्रुतिमें नेति नेति इसप्रकार दो नकार दिएगएहैं। इसमेंसे एक न केद्वारा तो ईश्वरपनेकी उपाधि जो शुद्धसत्वगुणप्रधानमाया या इच्छा, उसके कारण जो ब्रह्मका हुआ ईश्वर अपरब्रह्म और वैश्वानर रूपहै उसरूपका निषेध कियागयाहै। और दूसरे न केद्वारा जीवपनेकी उपाधि जो मलिनसत्वगुणप्रधानअविद्या या इच्छा, इसके कारण जो ब्रह्मात्माका हुआ प्राज्ञ तैजस और विश्व रूपहै—इस रूपका निषेध कियागयाहै। श्रुतिमें आयाहुआ यहभी नहीं तथा इससे और कुछ भिन्नभी नहींहै—इस वाक्यका भाव यहीहै कि ब्रह्मका माया और अविद्याके सहित ईश्वर तथा जीवरूप, वास्तमिकरूप नहींहै। इससे इसका निषेध करनाही उचितहै। यदि ब्रह्मके

इस ईश्वर जीवरूपी स्वरूपोंको सर्वांशमें त्यागदें तो ब्रह्म इनसे अलग नहींहै । वह ज्ञेयहै । उसका त्याग वांछित नहींहै । इसलिए भागत्यागलक्षणाकेद्वारा इन दोनों रूपोंमेंसे विरोधि अंशको त्यागकर उसका ग्रहण करना उचितहै । ब्रह्मके रूप, आदित्य ईश्वरमेंसे तो विचारकेद्वारा जो शुद्धसत्वमाया रूपी कारण सूक्ष्म और स्थूलशरीर रूपहै, इस एकताके विरोधि वाच्यांशको अलग करदीजिये, उसमें केवल लक्ष्यस्वरूप सत्य ब्रह्मको रहनेदीजिये । इसीप्रकार ब्रह्मात्माकेरूप, पुरुष जीवमेंसे विवेकके-द्वारा जो मलिनसत्व अविद्यारूपी कारण सूक्ष्म और स्थूल शरीर रूपहै, इस एकताके विरोधि वाच्यभागको दूर कीजिये । इसमें केवल लक्ष्यस्वरूप ब्रह्मात्माको रहनेदीजिये । ब्रह्मनाम सच्चिदानन्द स्वरूपकाहै । इसप्रकार द्वारपाल और राजाके दृष्टांतके समान; निरुपाधि रूपमें, ईश्वर और जीव, इन दोनोंकी एकतामें कुछभी विरोध नहींहै । नेति नेति तथा यहभी नहीं और इससे भिन्नभी कुछ नहींहै—इस श्रुतिका वास्तविक अर्थ यहीहै । इसीलिये वह जो इस पुरुषमेंहै और जो उस आदित्यमेंहै वह एकहै-इन पूर्वोक्त श्रुतियोंका ऐसा कथन सत्यही है ।

"परीक्ष्य०" इन पूर्वोक्त मंत्रोंसे, गुरुकेद्वारा कहनेयोग्य तत्वसे ब्रह्मविद्याका उक्तप्रकारसे वर्णन कियागया । मुण्डक उप० के प्रथम खण्डमें वर्णन की हुई यही पराविद्याहै—जिसके द्वारा विरोधि वाच्यभागका निषेधकरके अविनाशी पुरुष जानाजाताहै ।

इसीसे वह सच्चिदानन्दस्वरूप अद्रेश्यं० न जाननेमें आनेवाला आदि अविनाशी ब्रह्महै।

बृहदा० अध्याय १ ब्राह्मण ४ श्रुति ६–ने स्वयं यह प्रश्न उठायाहै कि मनुष्य, जिस ब्रह्मविद्याकेद्वारा अब ऐसी संभावना करतेहैं कि हम सर्वरूप होजाएंगे पहले किस महापुरुषने उस ब्रह्मको जाना–जिससे कि वह सर्वरूप होगया। इस प्रश्नका उत्तर १०वीं श्रुति देतीहै कि वह पहलेभी वास्तवमें ब्रह्मही था, परन्तु बीचमें कुछ अज्ञान आगया–जिससे कि वह अपने वास्तविक ब्रह्मरूपको भूल सा गया। फिर कुछही समयके अनन्तर उसने अपने आपको "अहंब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्महूं, ऐसा जानलिया- इससे वह फिर सर्वरूप होगया, अर्थात् वह ब्रह्म होगया। उसके अनन्तर देवताओंके बीचमें जिसने उसको जानलिया वह ब्रह्म होगया तथा ऋषियोंके बीचमें जिस ऋषिने उसे जाना वह भी ब्रह्म होगया तथा मनुष्योंके बीचमें, जिस मनुष्यने ब्रह्मको जानलिया वहभी ब्रह्म होगया। इसीसे वामदेव ऋषिने अपनी सर्वात्मरूपताको प्रकट करतेहुए कहाहैकि मैं ही मनु था, मैं ही सूर्यहुँ ऐसा उसने अपना अनुभव बताया। अबभी यदि कोई मनुष्य, अपनेको "अहंब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूँ इसप्रकार विवेककेद्वारा जानलेताहै वह सब कुछ होजाताहै। देवताभी उसकी अपेक्षा महावीर्य नहीं होते और उसके ऐश्वर्यके रोकनेको समर्थ नहीं होते। क्योंकि वह इन देवताओंका

आत्मा होजाताहै । जो मनुष्य, अपनेसे भिन्न किसी देवताकी उपासना करताहै कि वह देवता मेरेसे भिन्नहै और मैं उससे भिन्न हुँ वह अज्ञानीहै । वह देवताओंका पशु अर्थात् पालन करनेवालाहै । जैसेकि बहुत पशु, मनुष्यका पालनकरतेहैं, इसी-प्रकार एक एक मनुष्य,देवताओंका अग्निहोत्र आदि कर्मकेद्वारा पालनकरताहै । यदि मनुष्यके बहुतसे पशुओंमेंसे कोई एक पशु किसी हिंसक जीवकेद्वारा माराजाताहै तो उस मनुष्यको दुख होताहै । बहुत मारेजावें तो अत्यन्तही दुख होजाताहै इसीलिये मनुष्योंका ब्रह्मज्ञानी होजाना देवताओंको प्रिय नहींहै । (क्योंकि वे मुक्त होजातेहैं ।) यह श्रुतियोंका अर्थहै ।

द्वैतवाद पर विचार

प्रियपाठकगण । गौड़िया सम्प्रदायके प्रवर्तक मध्वाचार्यजीका तथा श्रीरामानुजाचार्यजी आदि द्वैतवादियोंका यह सिद्धान्तहैकि प्रत्येक जीवमें, सबसे पीछे सर्वज्ञ अन्तर्यामी सच्चिदानन्द ब्रह्महै । उसके आगे उसकी मायाशक्तिहै, उसके अनन्तर सत्चित् रूप जीवात्माहै, इसके आगे इसकी अविद्या रूपी इच्छा शक्तिहै । इन लोगोंका ऐसा सिद्धांतहै । इसका तात्पर्य यह होताहैकि अन्तर्यामीब्रह्म, अपनी प्रकृतिको प्रेरणाकरताहै और वह जीव-आत्माको धक्का लगातीहै, तब यह जीवात्मा अपनी इच्छाको शुभाशुभमें लगाताहै । परन्तु इस सिद्धांतके अनुसार, जीवको कणमात्रकी भी स्वतंत्रता प्राप्त नहींहै यह एकप्रकारसे ईंट

पत्थरके समान बनजाताहै । ईंटको चाहेतो नालीमें लगालो या किसी पवित्र मन्दिरमें—वह कुछ नहीं कहेगी । ऐसाही यह जीवात्मा भीहै । क्योंकि यह प्रेर्यहै किन्तु प्रेरक नहींहै । और यह अन्तर्यामीब्रह्मके सम्मुख नहीं जासकताहै । क्योंकि इसके पीछे मायारूपी दीवारहै उसमें इसका प्रवेश नहींहै । कारणकि यह बहिर्मुखहै उसकी ओर इसका मुख नहींहै । भक्तिभी यह इसप्रकार करसकेगा जिससे कि मैं अल्पज्ञहुं इसीसे वह सर्वज्ञ होगा। क्योंकि मैं अल्पशक्तिवालाहुं वह सर्वशक्तिमान होगा । क्योंकि मैं दुखीहुं, अतः वह आनन्दरूप होगा । इसप्रकारके अनुमान—द्वारा, यह अपनी त्रुटियोंको देखताहुआ जैसा भी चाहे उसका गुणगान करसकताहै । केवल श्रद्धाकी बातहै । वास्तवमें देखा-जावे तो शरीरमें एक आत्मासे भिन्न दूसरा कोई परमात्मा नहींहै ।

पारमार्थिक द्वैत

श्रीमध्वाचार्यजी तथा श्रीरामानुजाचार्यजी आदि भक्तजन, यह मानतेहैंकि इस शरीरमें पहले सत् चित् जीवात्माहै, इसके पीछे माया और उसके पीछे सच्चिदानन्द ईश्वरान्तर्यामीहै । जीवात्मा, परमात्मज्ञानद्वारा उसकी भक्तिकरके मोक्षकी अवस्थामें उसकी समीपता प्राप्तकरके उसकी कृपासे उसके सत्यकाम सत्यसंकल्प आदि ब्राह्म ऐश्वर्यको भोगताहै । इसप्रकार ये सभी भक्तलोग, मोक्षमेंभी जीव और ईश्वरकी भिन्न २ स्थिति मानतेहैं, यह

पारमार्थिक द्वैतहै यानी परमार्थमेंभी दो का बने रहना। न्याय-शास्त्र और वैशेषिकशास्त्र ये दोनों यह मानतेहैं, कि मोक्षमें मन अलग होजाताहै और जीवात्मा अपने सत्मात्र या जड़रूपसे स्थित होजाताहै। दोनोंही भिन्न २ होकर रहतेहैं। सांख्यदर्शन और योगदर्शन ये दोनों यह मानतेहैंकि बुद्धि या प्रकृति अलग होजातीहै और पुरुष-जीवात्मा अपने चैतन्यमात्ररूपसे स्थित होजाताहै, यह सब पारमार्थिक द्वैतहै अर्थात् मोक्षमेंभी दो का बने रहना। इसीसे ऐसा माननेवाले ये सभी लोग, द्वैतवादी कहलातेहैं। क्योंकि इनके मतसे व्यवहारमें तथा परमार्थमें भी दोनों अवस्थाओंमें द्वैतहै।

पारमार्थिक अद्वैत

एकही सच्चिदानन्दब्रह्म, कार्यरूप सूक्ष्मशरीरकी उपाधिसे जीव कहलाताहै और कारणशरीररूप आनन्दमयकोशकी उपाधि या स्थानसे प्राज्ञ—ईश्वरान्तर्यामी कहाजाताहै। तथा कार्य और कारणरूप उपाधिसे रहितहुआ वहीं परमात्माहै अर्थात् ब्रह्महै। कैवल्यमोक्षकी अवस्थामें, कार्य तो कारणमें लीन होजाताहै। और कारणशरीर प्रकृति आनन्दमयकोश स्पन्दशक्ति अस्मि अथवा इच्छाशक्ति, स्वाश्रय सच्चिदानन्द आत्मामें विलीन हो-जातीहै। क्योंकि शक्ति, शक्तिवानसे पृथक् नहीं रहसकती। इस-प्रकार केवल सच्चिदानन्दब्रह्मात्माही शेष रहजाताहै। यह पार-मार्थिक अद्वैतहै, अर्थात् व्यवहारमें अविद्याद्वारा द्वैतसाहै किंतु

परमार्थरूपी कैवल्यमोक्षमें अद्वैतहै। इसके माननेवाला अद्वैतवादी कहाजाताहै। परन्तु जो व्यक्ति, एकही शरीरमें, माया और अविद्या इन दोनों उपाधियोंकी स्थिति स्वीकार कर, जीव और उपास्य ईश्वरकी स्थितिमानताहै वह अद्वैतवादी कहलानेका अधिकारी नहींहै। वह मूढ़है। उसे अद्वैतसिद्धान्तका कुछभी अनुभव नहींहैं। क्योंकि एक शरीरमें नखसे लेकर शिखा पर्यन्त एकही उपाधि रहतीहै दोनों नहीं रहतीं। अन्य सभी शास्त्रोंमें अद्वैतसिद्धान्तका खंडन पायागयाहै। परिशेषतः अद्वैतसिद्धान्त ब्रह्मसूत्रकाही सिद्धहोताहै। इसके मुख्य आचार्य अब आद्य श्रीशंकराचार्यजीही मानेजातेहैं।

तत्त्वमसि महावाक्यका अर्थ

छांदोग्य छठे अध्यायके अष्टम खंडकी दो श्रुतियोंका अर्थ—उद्दालक नामसे प्रसिद्ध अरुणके पुत्रने अपने पुत्र श्वेतकेतुसे कहा—हे सोम्य। तू मेरेद्वारा स्वप्रान्त (सुषुप्ति) को विशेषरूपसे समझले। जिस अवस्थामें यह पुरुष सोताहै, ऐसा कहाजाताहै, उस समय सोम्य। यह सत्से संपन्न होजाताहै, यह अपने स्वरूपको प्राप्त होजाताहै। इसीसे इसे "स्वपिति" ऐसा कहाजाताहै, क्योंकि उससमय यह "स्व" अपनेकोही प्राप्त होजाताहै। ॥१॥ जिसप्रकार डोरीसे बंधाहुआ पक्षी दिशा विदिशाओंमें उड़कर अन्यत्र स्थान न मिलनेपर अपने बन्धनस्थानकाही आश्रय लेताहै, उसीप्रकार निश्चयही सोम्य। यह मन दिशा

विदिशाओंमें उड़कर अन्यत्र स्थान न मिलनेसे प्राणकाही आश्रय लेताहै। क्योंकि सोम्य। मन प्राणरूप बन्धनवालाहै। अर्थात् इसका सत्ही आश्रयहै ॥२॥ आगेकी श्रुतियोंका संक्षिप्त अर्थ– सोम्य। तू मेरेद्वारा भूख और प्यासको जान। जिस समय यह पुरुष कुछ खाताहै उससमय जलही इसके भक्षणकिये-हुए अन्नको लेजाताहै। हे सोम्य! उस जलसे ही तू इस शरीर को उत्पन्नहुआ जान। क्योंकि यह बिना कारणके नहींहै। अन्न-को छोड़कर इसका मूल और कहां होसकताहै। इसीप्रकार सोम्य। तू अन्नरूप अंकुर द्वारा जलरूप मूलको खोज। और हे सोम्य। जलरूप अंकुरकेद्वारा तेजोरूप मूलको जान। तथा तेजोरूप अंकुर-केद्वारा सद्रूप मूलका अनुसन्धानकर। सोम्य। इसप्रकार यह उक्त सभी प्रजा, सत् मूलकहै तथा सत् ही इसका आश्रयहै और सत्ही प्रतिष्ठा नाम लय स्थानहै ।३।४। जिससमय यह पुरुष पीताहै तो इसके पीयेहुए जलको तेज ही लेजाताहै। हे सोम्य। उस जलरूप मूलसे यह शरीररूप अंकुर उत्पन्न होताहै ऐसा जान। क्योंकि यह मूलरहित नहीं होसकता ॥५॥ सोम्य। उस शरीरका जलके बिना और मूल नहींहै। जलरूप अंकुरके-द्वार तू तेजोरूप मूलको जान। और तेजोरूप अंकुरकेद्वारा सद्रूप मूलकी शोधकर। सोम्य। इस सम्पूर्ण प्रजाका सत्ही कारणहै तथा सत्ही स्थिति स्थानहै और सत्ही लय स्थानहै। सोम्य। पृथिवी जल और तेज इन तीन स्थूलभूतोंका त्रिवृत्-

करण पहले ही कहाजाचुकाहै । हे सोम्य । मरणको प्राप्त होते-हुए इस पुरुषकी वाणी मनमें लीनहोजातीहै, तथा मन प्राणमें प्राण तेजमें और तेज परदेवतामें लीनहोजाताहै। वह जो यह अणिमाहै, इसीकारूप यह सबहै । वह सत्यहै वह आत्माहै और हे श्वेतकेतो, वही तू है । श्वेतकेतुने कहा मुझे फिर समझाइये । आरुणिने कहा अच्छा ।६।७। आठवां खंड समाप्तहै ।

स्मरण रहे कि शुद्ध सत्वगुणप्रधानमायाके सहित चैतन्य, तत्पद-का वाच्यार्थ ईश्वरहै और मायासे रहित चैतन्य, तत्पदका लक्ष्याथ ब्रह्महै, एवं अविद्याकेसहित चैतन्य त्वं पदका वाच्यार्थ जीवहै और अविद्यासे रहित चैतन्य, त्वं पदका लक्ष्यार्थ कुटस्थ आत्माहै, यह प्रक्रिया यहांके शांकरभाष्यसे सर्वथाही विपरीतहै । क्योंकि भाष्यमें, मनसे रहित शुद्ध सत्को तत्पदसे ग्रहण कियाहै और मनके सहित सत्को त्वं पदसे ग्रहणकियाहै । इसीसे पहिलेही तत्त्वमसि इस वाक्यका "अतस्तत्सत्त्वमसीति श्वेतकेतो" हे श्वेतकेतो, अतः वह सत् तू है ऐसा अर्थ, इस भाष्यसे कियाहै । एवं आगेके आठोंही तत्त्वमसि वाक्योंका व्याख्यातम्, समानं, तथा उक्तार्थम्—अर्थ कहदिया ऐसाही अर्थ कियागयाहै । "यन्मयो यत्स्थश्च जीवो मनन दर्शन श्रवणादि व्यवहाराय कल्पते तदुपरमे च स्वं देवतारूपमेव प्रतिपद्यते" जीव, जिसके रूपसे और जिसमें स्थित होकर मनन

दर्शन और सुनना आदि व्यवहार करताहै सुषुप्तिमें उस मनके उपराम होनेपर अपने परदेवतारूपको प्राप्त होजाताहै ।

न ह्यन्यत्र सुषुप्तात्स्वमपीतीति जीवस्येच्छन्ति ब्रह्मविदः ब्रह्मवेत्ता लोग, सुषुप्तिसे भिन्न, जाग्रत और स्वप्नमें जीवका अपने स्वरूपको प्राप्त होना नहीं मानते अर्थात् सुषुप्तिमें ही मानतेहैं । **जीवात्मना मनसि प्रविष्टा नामरूपव्याकरणाय परादेवता सा स्वमेवात्मानं प्रतिपद्यते जीवरूपतां मन आख्यां हित्वा ।** नामरूपको प्रकट करने केलिये जीवरूपसे मनमें प्रविष्टहुआ परमात्मा, मन नाम वाले जीवरूपको त्यागकरके वह अपने स्वरूपको प्राप्तहोजाताहै । **मनसि प्रविष्टं मन आदि संसर्गकृतं जीवरूपं परित्यज्य स्वं सद्रूपं यत्परमार्थसत्यमपीतो अपिगतो भवति ।** मनमें प्रविष्टहुआ मन आदिके संबन्धसे कियेहुए जीवरूपको त्यागकर अपना जो परमार्थ सत्य सद्रूपहै उसे प्राप्त होजाताहै सुषुप्तिमें । आगेके खंडोंमें महाप्रलयके विषयमेंभी ऐसाही कहाहै । मरण अवस्थामें ज्ञानी और अज्ञानी दोनोंही स्वस्वरूपभूत सत् नामी परमात्मा होजातेहैं किंतु ज्ञानीका पुनर्जन्म नहीं होताहै । और अज्ञानीका पुनर्जन्म होताहै । ज्ञानीके और अज्ञानीके मरणमें यही विशेषताहै ऐसा कहाहै । यह कुछ भाष्यहै और शेष भाष्यका अनुवादहै ।

१ सम्पूर्ण सुषुप्तिको आनन्दमयकोश या कारणशरीर माननेवाले व्यक्तियोंकी इस श्रुति और भाष्यद्वारा आंखें खुल जानी चाहियें । क्योंकि वे लोग अभीतक अंधेरेमेंही जारहेहैं । २ जोलोग, आत्माको कोशातीत और कारणातीत तो बतारहेहैं, परन्तु उसकी कोशातीत और कारणातीत चौथी तुरीय अवस्था सुषुप्तिकी मध्य अवस्था नहीं बतारहेहैं वे भी आत्माका, कोशों और तीन शरीरोंसे अन्वय संबन्ध या मेल बतानेसे तीनशरीरोंमेंही भ्रमण कररहेहैं, अतः वे अपने वास्तविक घरको भूले हुएहैं। जैसे कोई स्वर्णकी आभूषणोंद्वाराही सिद्धिकरे परन्तु उसकी आभूणोंसे रहित डली रूप शुद्ध अवस्था न दर्शावे, इसीप्रकार उन्हें भी आत्माकी शुद्ध व्यतिरिक्त या भिन्न अवस्थाका कुछभी बोध नहींहै। कारणकि आत्माकी, सुषुप्तिकी मध्य अवस्था या गाढ सुषुप्तिही कोशातीत या कारणातीत शुद्ध निर्गुणब्रह्मरूपा चौथी तुरीय अवस्थाहै । ३ जो लोग, गाढसुषुप्तिको निर्गुणब्रह्म सच्चिदानन्द आत्माकी तुरीय अवस्था "जोकि विदेहकैवल्य मुक्तिका छोटा रूपहै" नहीं मानरहेहैं, वे लोग, श्रुतियोंके विरोधी तथा अपनी बुद्धिके भी परमशत्रुहैं । क्योंकि वे निर्गुण ब्रह्मात्मासे उसकी मनरूपाशक्तिको उससे भिन्न करके उसके अत्यन्ताभाव करनेकी सर्वथा असम्भव कल्पना कर-रहेहैं । क्योंकि यह मनरूपाशक्ति ब्रह्मात्माके ही आश्रितहै, इसका अन्य कोई ठिकाना नहींहै । इसलिये मनरूपाशक्तिका सच्चिदा-

नन्दब्रह्मात्मामें छिपजानाही ब्रह्मात्माकी निर्गुण अवस्थाहै और इसका सच्चिदानन्दात्मामें प्रकट होजानाही ब्रह्मात्माकी सगुण अवस्था या बन्ध अवस्थाहै। इसलिये सुषुप्तिकी मध्य अवस्था-भी आत्माकी शुद्ध निर्गुण अवस्थाहै या सापेक्ष मोक्ष अवस्थाहै। अस्तु। इस खण्ड से आरम्भ हुआ "तत्त्वमसि" यह वाक्य, सम्पूर्ण छठे अध्यायका साररूपहै। इस वाक्यमें कथित तत् यह पद शुद्ध सत्का स्मारकहै, किन्तु यह मायापति ईश्वरका वाचक नहींहै। इस आठवें खण्डमें सत्को तीनप्रकारसे एक अद्वितीय ब्रह्म सिद्ध कियागयाहै। १—सुषुप्तिद्वारा २—समाधिद्वारा ३—मरणकेद्वारा। इसमें आया हुआ "तत्वमसि" यह वाक्य, इन्हीं तीन अवस्थाओंसे सम्बन्ध रखताहै। आगेके सभी खण्डोंमें, इस खण्डमें आएहुए विषयोंकाही दृष्टान्तोंद्वारा स्पष्टीकरण किया गयाहै।

नवम खण्डकी भूमिका

१सुषुप्तिद्वारा—जिस अवस्थामें यह पुरुष सोताहै ऐसा कहा-जाताहै उससमय हे सोम्य (सोम्य नाम प्रियकाहै) यह सत्से संपन्न होजाताहै, यह अपने स्वरूपको प्राप्त होजाताहै-इसीसे इसे "स्वपिति" ऐसा कहाजाताहै, क्योंकि उस समय यह "स्व" अपनेको प्राप्त होजाताहै।१। जैसे पक्षीका बन्धनस्थान डोरीहै ऐसेही मनका बन्धन स्थान या आश्रय सत्है। यह आठवें खण्डकी दो श्रुतियोंका संक्षिप्त अर्थहै। इस खण्डद्वारा सत्में

संसारकी कारणताका हेतु मन बतायागयाहै । इसप्रकार इस आठवें खण्डमें सत्‌को सुषुप्तिद्वारा एक अद्वैतब्रह्म सिद्ध किया-गयाहै । अब इसी बातको दृष्टान्तसे स्पष्ट करतेहैं ।

नवम खण्ड

इस खण्डमें, मधुके दृष्टांतसे यह बतायागयाहैकि हे सोम्य ! जैसे नाना वृक्षोंके रस, मधु रूपहोकर अपने २ पहिलेके नामों और रूपोंको भूल जातेहैं-ऐसेही यह सम्पूर्ण व्याघ्रसिंह आदि प्रजा, सुषुप्ति अवस्थामें सद्रूप होकर यह नहीं जानती कि हम सद्रूप होगएहैं—वे इस लोकमें व्याघ्र सिंह भेड़िया शूकर कीट पतंग डांस अथवा मच्छर जो जो भी सुषुप्ति अवस्थाके पूर्व होतेहैं वे ही पुनः होजातेहैं । आगे "स य एषोऽणिमा" इस अन्तिम श्रुतिके अर्थको जाननेकेलिये पहिले सृष्टि क्रमको समझलेना चाहिये । जोकि इसी अध्यायके दूसरे खण्डसे आरम्भ किया-गयाहै-वह ऐसेहै- "**सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवा-द्वितीयम् ।१। तदैक्षत वहुस्यां प्रजायेयेति ।२।**

हे सोम्य । यह सब प्रपंच अपनी उत्पत्तिसे प्रथम या महाप्रलय-की मध्य अवस्थामें, एकही अद्वितीय सत्‌था । अर्थात् सत्‌से भिन्न नहीं था-इसीसे वह सत्, स्वगत आदि तीन भेदोंसे रहित होनेसे निरपेक्ष निर्गुण ब्रह्मथा ।१। 'तदैक्षत वहुस्यां प्रजायेयेति' तत्-उसी सत्‌ने, ऐक्षत-ईक्षणा या इच्छाकी, बहुस्यां-बहुतहोजाऊं,

प्रजायेय-अनेकप्रकारसे उत्पन्न होजाऊं। यह श्रुतियोंका अर्थहै। भावार्थ-"तदैक्षत" इस श्रुतिमें तत् यह पद, एक अद्वितीय सद्ब्रह्मका स्मारकहै। ऐक्षत-यह पद, सामान्य इच्छाका वाचकहै-जोकि सात्विकी राजसी और तामसी सबप्रकारकी इच्छाओंका सामूहिकरूपहै। इसी इच्छारूपी कारणशरीर या आनन्दमयकोशके सहितहोनेसे वही एक अद्वितीय व्यापक सत्, ईश्वर और जीवोंकेरूपसे बहुरूपसा या विभक्तसा होगया। व्यापक सत्में जहांपर शुद्ध सात्विकी इच्छा होगई वहां वह सत्, प्राज्ञविशेष-नामी, निरपेक्ष ईश्वर होगया। सत्में जहांपर शुद्ध सत्वप्रधानकी अपेक्षा मलिनसात्विकी इच्छा हुई वहां वहांपर वह सत्, प्राज्ञनामी सापेक्ष ईश्वर होगया। इसप्रकार इच्छारूपी कारण-शरीरोंका अभिमानी प्राज्ञोंका समूह होगया। जिससेकि सूक्ष्म-सृष्टिसे प्रथम, स्थूलसृष्टिकी उत्पत्ति माननी सयुक्त नहींहै। इसीसे दूसरी इच्छा, सत्के बहुरूप प्राज्ञोंने सूक्ष्मशरीरोंके लिये की-ऐसा मानना सयुक्तहै। उन्होंने इच्छाकरके शब्द आदि तन्मात्राओंद्वारा बुद्धि मन पांचज्ञानेद्रियों पांचप्राण और पांच-कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति की। इन्हीं १७ तत्वोंरूप सूक्ष्मशरीरोंद्वारा, सत्के बहुरूप प्राज्ञोंकी, बहुरूप तैजसनामी जीव संज्ञा होगई। प्राज्ञविशेष निरपेक्ष ईश्वरकी, अपने सूक्ष्मशरीरद्वारा हिरण्यगर्भ या अपरब्रह्म संज्ञा होगई। वेदोंमें, हिरण्यगर्भको "**हिरण्य-गर्भं जनयामासपूर्वं**"-सबसे प्रथम हिरण्यगर्भको उत्पन्न

किया—यहांपर ईश्वरका शरीर मानागयाहै। और " हिरण्य-गर्भः समवर्तताग्रे"—पहले जगत्का पति एक हिरण्यगर्भही था। इस मंत्रद्वारा उसे ईश्वर मानागयाहै। इसप्रकार निरपेक्ष ईश्वर, जीवोंसे भिन्नहै और जीव, ईश्वरसे अलगहैं। किंतु सत् तो निरपेक्ष ईश्वर और जीव इन दोनोंमें ही व्यापकहै। जैसाकि राजा तो द्वारपालसे भिन्नहै और द्वारपाल, राजासे भिन्नहै किंतु मनुष्यता दोनोंमेंही व्यापकहै। सत् तो महाकाशके समान ब्रह्म या व्यापकहै। मठाकाशके समान आदित्यस्थानी निरपेक्ष ईश्वरहै। तथा घटाकाशके समान अन्यजीवहैं। ये सब परस्परमें भिन्न भिन्नहैं, इसीसे परिच्छिन्नहैं। ईश्वरतो, जीवोंका कारण नहींहै तथा जीव, ईश्वरके कार्य नहींहैं। इसीसे इन दोनोंका परस्परमें कारण कार्यरूप सम्बन्ध नहींहै। अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति—सुषुप्तिमें और स्वप्न अवस्थामें यह पुरुष स्वयं-प्रकाश या स्वतंत्र होताहै। इस बृहदा-श्रुतिसे, सूक्ष्म शरीरतक वे जीव स्वतंत्र रहे। अब तीसरी इच्छा, सत्के रूप प्राज्ञ तथा प्राज्ञोंके रूप तैजसजीवोंको, स्थूलशरीरोंकेलिये हुई। परन्तु इस कार्यके करनेमें वे असमर्थ रहे। "ता एनमब्रुवन्-" इस ऐतरेय श्रुतिसे, तब वे तैजसजीव, निरपेक्ष ईश्वरसे बोले कि आप हमारेलिए स्थान बनादीजिए जिसमें स्थितहोकर हम, अन्न खासकें। तब निरपेक्ष ईश्वर हिरण्यगर्भ या कठ तथा प्रश्नउप०के अनुसार अपरब्रह्मको, स्थूलशरीरोंके बनानेकेलिए इच्छा उपजी। इसप्रकार पहिली

इच्छा शुद्ध सत्में हुई। दूसरी इच्छा, सत्के बहुरूप प्राज्ञोंमें, सूक्ष्मशरीरोंकेलिये हुई । तीसरी इच्छा, प्राज्ञोंके रूप तैजसोंमें स्थूलशरीरोंकेलिये हुई । और अपरब्रह्ममें तीसरी इच्छा, स्थूल-शरीरोंके बनानेवास्ते हुई । प्रियपाठको । अब " तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति" इस पाठके अनन्तर "तत्तेजोऽसृजत"—उसने तेज-को रचा । इत्यादि पाठको लगानाचाहिये । उसने अर्थात् सत्के बहुरूपमेंसे एकरूप अपरब्रह्मने, अपनेलिये तथा सूक्ष्मशरीरयुक्त बहुरूप अन्य जीवोंकेलिये ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद ४

जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च ॥१७॥

प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारकमंडलस्थोक्तेः ॥१८॥

इन सूत्रोंके अनुसार, स्थूल जगत्की उत्पत्ति पालन और संहार करनेका अधिकार, आदित्यमंडल अवस्थित परमात्माकोहै । इसलिये उसने, तेज जल और पृथिवी इन तीन स्थूलभूतोंकी उत्पत्ति करके इनका त्रिवृतकरण अर्थात् एक एक भूतके तीन तीन किये जाना ऐसा त्रिवृत् करण किया । इनकेद्वारा, अपने लिये आदित्यनामका स्थूलशरीर बनाया तथा अन्य बहुरूप सूक्ष्मशरीरकेलिये उसीके पूर्वमें किये हुए कर्मोंके परिणाम स्वरूप स्थूलशरीरोंको बनाकर उनकेद्वारा उस सूक्ष्म बहुरूपको ढक-दिया। उसके अनन्तर वह बहुरूप तैजसनामी सत्, आगेके लिये स्थूलशरीरोंको बनानेकेलिये स्वतंत्र होगया । इसप्रकार पहले जो [illegible] अद्वितीय सत् था वह इन्हीं स्थूल शरीरोंद्वारा

वैश्वानर देव दानव मानव पशु पक्षी और पतंग आदि अनेक नामोंसे प्रसिद्ध होगया। प्रिय पाठक जी। अब प्रकरणको लीजिये। उसी बहुरूप सत्में जो अब एक त्वं रूपी सत्, घटके नाशसे घटाकाशके महाकाशरूप होजानेकी भान्ति, जीवत्वके कारण मनके सत्में लीन होजानेसे सुषुप्तिकी मध्य अवस्थामें जो पुनः सद्ब्रह्मरूपसे स्थितहै। **स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यम्। स आत्मा, तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति।** स—जो इच्छाकी उत्पत्तिसे प्रथम, द्वैतरहित एकही सद्ब्रह्म था वह, य एषः—वही जो सत्, ईक्षण या इच्छाकरके बहुरूपमें कारणरूप त्वं है यह, अणिमा— सूक्ष्महै, एतदात्म्यम्—इसी सत् और मनरूपी कारण त्वं का रूप, इदं सर्वं—यह सब तेज जल और पृथिवी, कार्य रूप प्रजाहै, तत्सत्यम्—यह कारण कार्य रूपी त्वं, सत् रूपसे नित्यहै, स आत्मा—वह सत् व्यापकहै, हे श्वेतकेतो। तत्-जो अब सुषुप्तिमें मनके सत्में लीन होजानेपर सत् रूपसे एक अद्वैत ब्रह्महै वह, त्वं-सत् और मनरूप त्वंमेंसे मनरूप एक वृति भागका त्याग करनेसे दूसराभाग सत्, कारण कार्यसे रहित तत् रूपसे एक निर्द्वैत ब्रह्म, असि–है। अर्थात् मनकी निरुद्धावस्थामें तत् और त्वं में भेद नहींहै। स्मरण रहे कि सृष्टिकालमें मुक्तपुरुषसत्, अपनी दृष्टिसे एकही अद्वैत या स्वगत आदि भेद शून्यब्रह्महै और महाप्रलयमें सत्, ज्ञानी अज्ञानी या सबकी दृष्टिसे एकही अद्वितीय ब्रह्महै। क्योंकि इसी

रीतिसे "सदेव" इस श्रुतिका अर्थ संगत होताहै। अब प्रश्न यह हुआकि जिस लक्षणावृत्तिसे तत् और त्वं की एकता कही गईहै वह लक्षणावृत्ति क्याहै। उत्तर—पदका अर्थके साथ जो वर्तावहै उसका नाम वृत्तिहै-वह वृत्ति दो प्रकारकीहै एक शक्ति वृत्ति दूसरी लक्षणावृत्ति कहलातीहै। अर्थात् पदका अपने अर्थके साथ मिलाप दो प्रकारसे होताहै। वाच्यके सम्बन्धको लक्षणा कहतेहैं। इसलिये लक्षणाके बोधार्थ पहिले वाच्यका ज्ञान होना आवश्यकहै। वह ऐसेहै—पद वाचक होताहै और उसका अर्थ वाच्य होताहै, जिस अर्थको पद, अपनी सामर्थ्यरूप शक्तिसे जितलावे वह उस पदका वाच्य होताहै। जैसे घट, इस पदके सुनतेही श्रोताको कलशरूपी वाह्य अर्थका ज्ञान होजाताहै, वह अर्थ, घट पदका वाच्यहै। पदोंका समूह वाक्य होताहै। जिस वाक्यके अर्थ या तात्पर्यको पद, अपनी सामर्थ्यरूपशक्तिसे बोधकरे वह अर्थ, पदकी शक्तिसे जानागयाहै। जैसे किसीने कहा घड़ेको ले आ, ऐसा सुनतेही श्रोताको वाक्यके तात्पर्यका भान होगया और वह घड़ेको ले आया। यहां पर पदने अपनी सामर्थ्यसे वाक्यके अर्थ का बोध करदिया। यही पदकी शक्तिवृत्तिकहलातीहै। जो लक्षणावृत्तिसे जानाजावे वह लक्ष्य होताहै। जहांपर पद, अपने वाच्यार्थकेद्वारा, वक्ताके तात्पर्यकी सिद्धि न करे किंतु अपने वाच्यके सम्बन्धी द्वारा करे वह लक्षणावृत्ति कहलातीहै। १—जहती लक्षणा—जैसा किसीने कहा

गंगामें ग्रामहै । यहां श्रोताको गंगा यह पद, अपने गंगाके प्रवाहरूपी वाच्यकेद्वारा ग्रामकी स्थितिरूपी तात्पर्यका बोध नहीं करासका । क्योंकि गंगाके प्रवाहमें ग्रामकी स्थिति असंभवहै । अतः यहां गंगा पदने अपने वाच्यके संबन्धी किनारेद्वारा ग्रामका बोध कराया, यही पदकी लक्षणावृत्तिहै । इससे यह सिद्ध हुआकि वक्ता तो अब लक्षपिताहै या लखानेवालाहै, और श्रोता लक्षिताहै या लखनेवालाहै, तथा गंगा यह पद वाच्यके संबन्धी किनारेद्वारा लक्षणाहै, या लखनेका द्वारहै, एवं ग्राम लक्ष्यहै या लखागयाहै । प्रवाहरूपी समस्त वाच्यका त्याग कियागया-इससे इस लक्षणाका नाम जहती लक्षणाहै । २—अजहती लक्षणा—जहां वाच्यका त्याग न करके अधिकका ग्रहण कियागयाहै, वहां अजहती लक्षणा है । जैसे किसीने कहा लाल दौड़ताहै । यहां लाल यह पद वाचकहै और लाल रंग इसका वाच्यहै । किन्तु लाल रंगमें धावन बनता नहींहै । इसीलिये लालरंग सम्बन्धी घोड़ेका ग्रहण कियागया । क्योंकि उसमें धावन बनताहै । जिससे कि लालरंगरूपी सम्पूर्ण वाच्यभागको रखकर उससे अधिक घोड़ेका ग्रहण कियागया—इसीसे इस लक्षणाका नाम अजहति लक्षणाहै । ३—भागत्यागलक्षणा—परन्तु तत्त्वमसि वाक्यमें भागत्यागलक्षणा मानी गईहै । क्योंकि इसमें वाच्यके सम्पूर्ण भागको त्यागा नहीं जाताहै । और न अधिकका ग्रहण किया-जाताहै । वाच्यमेंसे केवल एकही विरोधि भागको त्यागा जाता-

है। इसीसे यह भागत्यागलक्षणा कहीगईहै। तत्त्वमसि वाक्यमें भागत्यागलक्षणा क्यों मानी गई। इसका उत्तर—तत्त्वमसिमें तत् यह पद, अहंनामी ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेयरूपी त्रिपुटीसे रहित निर्द्वैत सद्ब्रह्मका बोधकहै। और त्वं यह पद, मैं वृत्तिके सहित सत्का वाचकहै। और मैं वृत्तिके सहित सत्, त्वं पदका वाच्यहै। इसप्रकार त्वं, मैं नामी ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेयरूपी त्रिपुटीके सहित द्वैतरूप तथा परिछिन्नहै और तत् त्रिपुटी रहित ब्रह्महै। गुरुने कहाकि तत्त्वमसि वह तू है। यहां श्रोताको, त्वं यह पद, अपने इच्छावृत्तिके सहित सत् रूपी वाच्यका, द्वैतसे रहित तत्के साथ अभेदरूप अर्थका बोध नहीं करासका। क्योंकि इच्छावृत्ति सहितकी और इच्छावृत्ति रहितकी एकता असंभवहै। अतः यहां भागत्यागलक्षणा ऐसे करनी पड़ी कि त्वं पदके वाच्यमेंसे मैं वृत्तिरूपी एकताके विरोधि एकभागका त्यागकर वाच्यके संबन्धी तत् पद रूपी लक्षणाकेद्वारा वाच्यका दूसराभागसत् लक्ष्य बनाया। इससे यह सिद्ध हुआकि तत्त्वमसि वाक्यका उपदेष्टा गुरुतो लक्षपिताहै या लखानेवालाहै और जिज्ञासु रूपी श्वेतकेतु त्वं लक्षिताहै या लखनेवालाहै जोकि सत् और मन रूपसे वाच्यार्थहैं। इसमेंसे मनरूपी एकताके विरोधि एक-वृत्ति भागका त्यागकर तत् पदका ग्रहण लक्षणाहै या लखनेका-द्वारहै, एवं वाच्यका दूसराभाग सत् लक्ष्यहै या लखागयाहै।

अर्थात् गुरुने त्वं रूपी शिष्यको तत्के समीप पहुंचाया और तत्ने उसे व्यापक सत्में मिलादिया। इसप्रकार भागत्याग-लक्षणावृत्तिकेद्वारा तत् और त्वंकी एकता बनगईहै। "सोऽयं देवदत्तः" या यह वही देवदत्तहै, इस वाक्यके स और अयं इन दोनों पदोंमें लक्षणा करनी युक्तहीहै। क्योंकि जो देवदत्त स इस पदसे पहिले बकरी वालाथा वही देवदत्त अब अयं इस पदसे राजाहै। इसलिये एकताके बिरोधि दोनों वाच्य भागोंमेंसे देश काल आदि विरोधि एक एक भागका त्यागकर देवदत्तके शरीरमात्रमें दोनोंपदों वह और यहकी एकता बनतीहै। परन्तु तत्त्वमसि वाक्यमें यह उदाहरण उपयुक्त न होकर, राज-कुमारमें भिल्लपनेके आरोपका दृष्टान्त उपयोगीहै। जैसे कोई राजकुमार किसीकारणवस भिल्लोंद्वारा पालागया। तब उसको मैं भिल्लहुं ऐसा दृढ़ भ्रम होगया। फिर किसीने उसे ऐसा उपदेश किया कि तत्त्वमसि—वही राजकुमार तू है। अब उसे अपनेमेंसे केवल भिल्लपनेके साधनोंका त्याग करना पड़ा, राजकुमार तो वह थाही, उसका त्याग कैसे होसकताहै। क्योंकि वह तो उसका स्वरूपहै। इसीप्रकार तत्त्वमसि वाक्यमेंभी एक त्वं पदमेंही लक्षणाहै। तत् तो त्वं का स्वरूपही है। जो लोग, "तदैक्षत" इस श्रुतिके तत् इस पदसे, मायापति सर्वज्ञ ईश्वरका ग्रहणकरके उसे अपने कारण सूक्ष्म और स्थूलशरीरकी उत्पत्तिका हेतुमानकर उसका अपनेमें निवास मानतेहुए फिर

उसे कल्पित बनारहेहैं वे लोग, मानो पितासे कल्पित पुत्रके समान स्वयं कल्पित होतेहुए अपने कल्पक पिताको कल्पित बनानेकी सर्वथा असंभव बातें बनारहेहैं । क्योंकि कल्पित, अपने कल्पक-को कल्पित नहीं बनासकता । इसलिये तदैक्षत इस श्रुति में तथा तत्त्वमसि वाक्यमें तत् यह पद, माया रहित सत्‌का ही स्मारक या बोधकहै किन्तु मायापति ईश्वरका वाचक नहींहै । इसप्रकार नवम खंडमें, सुषुप्तिके द्वारा त्वं पदकी व्याघ्र सिंह आदि हिंसक प्रजाके साथभी तत्‌रूपी सत्‌में मनकी लीनावस्थामें एकता कही-गईहै । इसलिये तत्त्वमसि वाक्यमें तत् यह पद, मायापति ईश्वर का वाचक नहींहै, किन्तु मायारहित सतका बोधकहै । नवम खण्ड समाप्तहै । दशमखण्डकी भूमिकाभी नवमखण्डकी भूमि-काके समानही समझनीचाहिये । क्योंकि इसमेंभी सत्‌को, सुषुप्ति केद्वाराही एक अद्वितीय ब्रह्म सिद्ध कियागयाहै ।

दशम खण्ड

इस खण्डमें नदियोंके दृष्टांतसे ऐसा सूचित कियागयाहैकि हे सोम्य । जैसे नदियां समुद्रसे उत्पन्नहोकर फिर समुद्रमें मिल जाती-हैं, वे सब समुद्रमें यह नहीं जानतीं कि यह मैं हुं और यहमैंहुं, ऐसेही ये सब व्याघ्रसिंह आदि प्रजाएं सत्‌से आनेपर यह नहीं जानतीं कि हम सत्‌से आयीहैं । वे इसलोकमें, व्याघ्र आदि जो जोभी सुषुप्तिसे प्रथम होतेहैं वे ही फिर होजातेहैं ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं, तत्सत्यम् स

आत्मा, त्त्वमसि श्वेतकेतो इति । इस श्रुतिका नवमखण्डमें स्पष्टीकरण कियाजाचुकाहै । क्योंकि इसमेंभी सत्को सुषुप्तिद्वारा, एक अद्वितीय ब्रह्म सिद्ध कियागयाहै । दशमखण्ड समाप्तहै ।

एकादशखंडकी भूमिका

२ समाधिकेद्वारा—हे सोम्य । जिससमय यह पुरुष कुछ खाताहै तब उस भक्षित अन्नको जल लेजाताहै । जलसेही तू शरीरको उत्पन्न हुआ जान । जलरूपी कार्यका मूल या कारण तेजहै और तेजका मूल सत्है । ऐसेही जब, यह पुरुष जल पीताहै तब उस जलको तेज लेजाताहै तब यह शरीर उत्पन्न होताहै । इस शरीररूपी कार्यका मूल जलहै, जलकामूल तेजहै और तेजका मूल या कारण सत्है । इसप्रकार यह तेज जल आदि सभी प्रजा सत् मूलकहै, सत्सेही स्थितहै और अन्तमें इसका सत्ही लय स्थानहै । यह अष्टमखण्डकी श्रुतिका संक्षिप्त अर्थहै । अब यहां सद्ब्रह्म और मायापति ईश्वरको एकही बस्तु माननेवाले भक्तलोगोंको दुराग्रह छोड़कर मानलेना चाहियेकि सत् तो ब्रह्महै—जोकि शुद्धसात्विकी मायारूपी इच्छाकरके आदित्यस्थानी निरपेक्ष ईश्वर हुआहै और मलिनसात्विकी मनरूपी इच्छाद्वारा जीवरूप हुआहै । इसप्रकार सत् दोनोंमें व्यापकहै । किंतु ईश्वर और जीव परस्पर भिन्न भिन्नहैं । इसलिये उक्त श्रुतिमें सत्नाम जीवकाहीहै, जोकि सृष्टिसे पहिले एक अद्वितीय सत्था, किन्तु

उक्त श्रुतिमें सत् नाम मायापति सर्वज्ञ ईश्वरका नहींहै। क्योंकि अवतो त्वं नामक जीवही शुभाशुभकर्मकेद्वारा इस तेज जल और पृथिवीके परिणामस्वरूप शरीररूपी प्रजाकी उत्पत्तिका कारणहै, और अन्न जलके भक्षणद्वारा इस तेज जल और पृथिवीके समुदाय शरीररूपी प्रजाकी स्थितिका मूलहै, अन्तमें इस प्रजाके मृत्युरूपी लयका मूलभी जीवहीहै, किंतु मायापति ईश्वर तो नहींहै। अस्तु। इसप्रकार आठवें खण्डमें सत्को, शरीरकी उत्पत्तिका कारण बताकर समाधिकेद्वारा मनके निरोधमें एक अद्वैत ब्रह्म सिद्ध कियागयाहै। अब इसी विषयको दृष्टांतसे स्पष्ट करतेहैं

एकादश खंड

इस खंडमें वृक्षके दृष्टान्तसे यह जितलायाहैकि हे सोम्य। जैसे किसीकेद्वारा वृक्षको खंड २ करकाटडालनेपरभी वह जीवात्माके सहित हराभरा खड़ा रहताहै, किंतु जीवात्मासे त्यागाहुआ वह साराही सूख जाताहै। ऐसेही जीवसे त्यागागया यह शरीरही मरताहै, किंतु जीव नहीं मरताहै। **स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यम्, स आत्मा, तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति।** स—जो इच्छाकी उत्पत्तिसे प्रथम, द्वैतरहित एकही सत्ब्रह्म था वह, य एषः—वही जो सत्, ईक्षण या इच्छाकरके बहुरूपमें त्वं कहाजाताहै और शरीरकी उत्पत्ति आदिका कारणहै यह, अणिमा-सूक्ष्महै, एतदात्म्यम्—सत् और मनके रूपसे जो

कारणरूप त्वंहै इसीकारूप, इदं सर्वम्–यह सब तेज जल और पृथिवी, कार्यरूप प्रजाहै, तत्सत्यम्--यह कारण कार्यरूपी त्वं सत् रूपसे नित्यहै, स आत्मा-वह सत् व्यापकहै, हे श्वेतकेतो, तत्-जो अब समाधिमें मनके सत्में लीन होजानेसे सत्रूपसे एक निर्द्वैत सद्ब्रह्म होगयाहै वह, त्वं—सत् और मनरूप त्वं मेंसे मन-रूप एक वृत्ति भागका त्यागकरनेसे दूसराभागसत, कारण कार्य से रहित तत् पदसे एक निर्द्वैत ब्रह्म तू, असि-है। अर्थात् मनकी निरुद्धावस्थामें तत् और त्वंमें किंचित्भी भेद नहींहै। इति। ऐसे-तो इस खंडकी भूमिकाद्वारा तथा इस खंडसे, जो अन्नजलके भक्षण द्वारा शरीरकी उत्पत्ति आदि करताहै और जिससे त्यागा-हुआ यह वृक्षरूपी शरीर सूख जाताहै वह जीव नित्यहै ऐसा बतलाकर वह तू है, इसप्रकार दूसरे जीवमें तत् पदका प्रयोग-करके उसके साथ त्वंपदकी, कारणरूपतामें एकता कीगई प्रतीत होतीहै, तोभी ऐसा नहींहै। क्योंकि १ तत् पद, इच्छा रहित एक अद्वितीय सत्का बोधकहै और त्वंपद इच्छासहित सत्का वाचकहै, जोकि शरीरकी उत्पत्ति आदिका करताहै। इसलिये कारणमें तत् पदका प्रयोग कियाजाना यहां वास्तविक नहींहै किन्तु गौणसाहीहै। २ सत्में कारणपनेका हेतु अविद्यारूपी मनहीहै, यही द्वैतहै। "द्वितीया द्वै भयं भवति" दूसरेसेही भय होताहै, इस तैतरीय श्रुतिसे, "नाल्पे सुखमस्ति।" अल्पमें या द्वैतमें सुख नहींहै, इस छांदोग्य श्रुतिसे, सिद्ध होताहैकि द्वैत

बोधनमें श्रुतियोंका तात्पर्य नहींहै। क्योंकि कारणके ज्ञानसे कुछ पुरुषार्थ सिद्ध नहीं हुआहै। इसलिये यहां समाधिस्थ सतरूपी तत्केसाथ, समाधिमें स्थित सत्रूपी त्वंकी एकता करनी चाहिये, इससे तत्त्वमसि वाक्यका अर्थ संगत होताहै। ३ इसकी भूमिकामें ऐसा कहाहैकि जबयह पुरुष खाता और पीताहै तथा इस खंडमें कहाहै, ऐसेही जीवसे त्यागाहुआ यह शरीरही मरताहै। इन दोनोंमें कर्मयोनिहोनेसे मनुष्यकाही नाम लियाहै। इसलियेभी समाधिस्थ सत्रूपी तत्के साथ समाधिमें स्थित सत्रूपी त्वंकी एकता करनी युक्तहै। क्योंकि वाच्यमेंसे विरोध एक भागका त्याग, सुषुप्ति समाधि और मरणमेंही होताहै, अन्यत्रनहीं। वृक्षोंका दृष्टांत केवल, सत्की कारणता नित्यता और व्यापकताका दर्शक तो है। परन्तु एतावन्मात्रज्ञान मोक्षका हेतु नहींहै। इसप्रकार एकादश खंडमें, समाधिद्वारा तत् और त्वं पदकी, मनोंकी निरुद्ध अवस्थामें एकता कही गईहै। इसलिये तत्त्वमसि वाक्यमें तत् यह पद, मायापति सर्वज्ञ ईश्वरका वाचक नहींहै, किन्तु मायारहित सत्का बोधकहै। एकादश खंड समाप्त हुआ।

द्वादश खंडकी भूमिकाभी एकादशखंडकी भूमिकाके समान हीहै। क्योंकि इसमेंभी सत्को, समाधिकेद्वाराही एक अद्वितीय ब्रह्म सिद्ध कियागयाहै।

द्वादश खंड

इस खंडमें, वट वृक्षके फलका दृष्टांत दिया गयाहै कि हे सोम्य ! वट वृक्षसे एक फल तोड़ला और उसे फोड़ डाल । श्वेतकेतुके ऐसा करनेपर आरुणिने पूछा इसमें क्या देखताहै, उसने कहाकि अणुके समान दानेहैं । आरुणिने कहा इनमेंसे एकको फोड़डाल । श्वेतकेतुके ऐसा करनेपर आरुणिने पूछा इसमें क्या देखताहै । श्वेतकेतुने कहा कुछ नहीं, तब उससे आरुणिने कहाकि हेसोम्य ! इस वटबीजकी जिस अणिमाको तू नहीं देखता उस अणिमाकाही यह इतना बड़ा वट वृक्ष खड़ा हुआहै । हेसोम्य । तू इस कथनमेंश्रद्धा कर। स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यम् स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति । इस श्रुतिका एकादश खण्डमें स्पष्टीकरण कियागयाहै। क्योंकि इसमेंभी सत्को समाधिद्वारा, एक अद्वितीय ब्रह्म सिद्ध कियागयाहै । इस खंडमें, आरुणिने कहाकि हे श्वेतकेतो, तूमेरे इस कथनमें श्रद्धा कर । परन्तु श्वेतकेतु श्रद्धाकरके चुप नहीं हुआ । उसने कहाकि मेरेको फिर समझाइये । इससे ऐसी शिक्षा मिलतीहै कि जबतक जिज्ञासुकी जिज्ञासा या जाननेकी इच्छा निवृत्त न होजावे तबतक उसे प्रश्न करतेही रहनाचाहिये । क्योंकि आत्मज्ञान विचारका विषयहै, केवल श्रद्धाका विषय नहींहै । द्वादश खंड समाप्तहै ।

त्रयोदश खण्डकी भूमिका

पूर्वोक्त खंडद्वारा आरुणिने श्वेतकेतुको कारणकार्यसे रहित सत्‌का बोध कराया। परन्तु इससे श्वेतकेतुको अपने अस्तित्वके अभावकी आशंका होगई। इससे श्वेतकेतुने कहा मेरेको फिर समझाइये। आरुणिने कहा अच्छा।

त्रयोदश खण्ड

हे सोम्य। इस नमकको जलमें डालकर कल मेरे पास आकर इस नमकको इसमें ढूंडना। श्वेतकेतुने वैसाही किया। परन्तु उसे डलीरूप नमक उस जलमें न मिला। आरुणिने कहा, नमक इसमें विलीन होगयाहै इसीलिये तू उसे नेत्रसे नहीं देखसकता। उसे यदि तू जानना चाहताहै तो इस जलको ऊपर मध्य और नीचेसे आचमनकर। श्वेतकेतुके आचमनकरनेपर आरुणिने पूछा क्याहै। श्वेतकेतुने कहा नमकीनहै। आरुणिने कहा इस जलमें नमक सदा विद्यमानहै। ऐसेही वह सत्‌भी इस शरीरमें सदा विद्यमानहै। तू उसे देखता नहींहै। **स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यम्। स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति।** स—जो इच्छाकी उत्पत्तिसे प्रथम, द्वैत रहित एकही सद्‌ब्रह्मथा वह। य एषः-वही जो सत् ईक्षण या इच्छाकरके बहुरूपमें कारणरूप त्वंहै यह। अणिमा सूक्ष्महै, एतदात्म्यम्—इसी सत् और मनरूपी कारण त्वंकारूप, इदं सर्वं-

यह सब तेज जल और पृथिवी, कार्यरूप प्रजाहै, तत्सत्यम्-यह कारण कार्यरूपीत्वं सत्रूपसे नित्यहै, स आत्मा-वह सत् व्यापकहै, हे श्वेतकेतो, तत्-जो इच्छाकरनेसे प्रथम, एक अद्वि-तीय सद्ब्रह्मथा वह, त्वं-वही सत् जो ईक्षण करके तेज जल और पृथिवीरूप कार्य प्रजाका करता सत् और मनरूप तथा कारण कार्य रूप तू है, त्वंमेंसे मनरूप एकवृत्ति भागका त्याग करनेसे दूसराभाग सत्, ततरूपसे एक निर्द्वैत ब्रह्म तू, असि-है। अर्थात् मनकी निरुद्धावस्थामें तत् और त्वं में भेद नहींहै। यह श्रुतियों-का अर्थहै।

जो लोग यहां, सत्से मायापति ईश्वर को ग्रहणकरतेहैं- वे लोग, केवल वेदान्त दर्शनकाही नहीं किन्तु स्वस्वरूपावस्थिति मुक्ति माननेवाले अन्य सभी सांख्यदर्शन आदि शास्त्रोंके सिद्धान्त-का खंडन करतेहैं। क्योंकि एक घटमें एकही आकाशके समान, एक शरीरमें एकही सत्है किन्तु जीव और ईश्वररूपी दो सत् नहींहैं। अस्तु। इस खंडमेंभी समाधिकेद्वारा मनकी निरुद्धाव-स्थामें सत्को, एक निर्द्वैत ब्रह्म सिद्ध कियागयाहै। त्रयोदश खंड समाप्तहै।

चतुर्दश खण्डकी भूमिका

पीछेके खंडमें आरुणीने श्वेतकेतुसे कहाहैकि सत् इसी शरीरमें-है, इसकी खोजकर। ऐसा सुनकर श्वेतकेतुको संदेह हुआकि तो वह सत् मिलता क्यों नहींहै। मुझे फिर समझाइये।

अब आरुणिजी इस विषयको इस खंडमें दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट करते-हैंकि सत्‌का ज्ञान गुरुसेही प्राप्त होताहै, बिना गुरुके नहीं।

चतुर्दश खंड

हे सोम्य! जैसे कोई चोर, किसी धनी पुरुषकी आंखें बाँधकर उसे गान्धार देशसेलाकर उसका धन छीनकर जनशून्य स्थानमें छोड़दें। उस जगह वह पुरुष, क्रमसे चारोंही दिशाओंकी ओर मुखकरके चिल्लावे कि मुझे आंखें बांधकर यहां लाया गयाहै और वैसेही छोड़ागया है। ऐसी उसकी पुकार सुनकर कोई दयालु पुरुष, उस पुरुषके बन्धन खोलकर कहेकि गंधार इस दिशामेंहै, अतः तू इसी दिशाको चलाजा। तो वह बुद्धिमान् पुरुष, एक ग्रामसे दूसराग्राम पूछताहुआ गान्धारमें ही पहुंचजाताहै। ऐसेही आचार्यवान् पुरुषही या गुरुभक्त ही सत्‌को जानताहै। फिर उसकी मोक्ष होनेमें उतनाही बिलम्बहै जबतक कि वह प्रारब्ध कर्मकी भोगसे समाप्ति नहीं करदेता। उसके पश्चात् तो वह सत्‌से संपन्न या ब्रह्म होजाताहै। **स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं, तत्सत्यम्। स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो। इति** स-जो इच्छाकी उत्पत्तिसे प्रथम, द्वैतरहित एक ही सद्ब्रह्मथा वह, य एषः-वही जो सत्, इच्छाकरके बहुरूप में कारणरूप त्वं है यह, अणिमा-सूक्ष्महै, एतदात्म्यम्-इसी सत् और मनरूपी कारण त्वंकारूप, इदं सर्वं-यह सब तेज जल और

पृथिवी, कार्यरूप प्रजाहै, तत्सत्यम्—यह कारण कार्यरूपी त्वं, सत् रूपसे नित्यहै, स आत्मा—वह सत् व्यापकहै, हे श्वेतकेतो। तत्—जो इच्छाकरनेसे पहिले एकही अद्वितीय सद्ब्रह्म था वह, वही जो सत्, ईक्षणकरके तेज़जल और पृथिवीरूप कार्य प्रजाका करता सत् और मनरूप तथा कारणकार्यरूप तू है, त्वंमेंसे मनरूप एकवृत्तिभागका त्याग करनेसे दूसराभाग सत्, ततूरूपसे एक निर्द्वैत ब्रह्म तू असि—है। अर्थात् मनकी निरूद्धावस्था में, तत् और त्वं में भेद नहींहै। यह श्रुतियोंका अर्थहै। इस खंडमेंभी समाधिकेद्वारा सत्को एक निर्द्वैत ब्रह्म सिद्ध कियागयाहै। चतुर्दश खंड समाप्तहै।

पंचदश खण्डकी भूमिका

३—मरणकेद्वारा—हे सोम्य। मरनेवाले पुरुषकी वाणी मनमें लीन होजातीहै तथा मन प्राणमें, प्राणतेजमें और तेज परमात्मदेवमें लीन होजाताहै। यह आठवें खंडकी श्रुतिका अर्थहै। इस श्रुतिसे स्पष्ट प्रतीत होताहै कि मृत्युकी अवस्थामें त्वं नामी जीव, मनोवृत्तिके स्वस्वरूप आत्मदेवमें लीन होजानेसे कुछ समय तक त्रिपुटीके अभावमें, एक अद्वितीय सद्ब्रह्म होजाताहै। अस्तु। आठवें खंडमें सत्को तीनप्रकारसे एक अद्वैत ब्रह्म सिद्ध कियागयाहै। १—सुषुप्तिकेद्वारा २—समाधिके द्वारा ३—मरणकेद्वारा, इन तीनोंमें चतुर्दश खण्ड तक सुषुप्तिद्वारा और

समाधिद्वारा सत् को एक अद्वैत ब्रह्म सिद्ध कियागयाहै। अब उसे मरणकेद्वारा, एक अद्वैत ब्रह्म सिद्ध कियाजाताहै। क्योंकि श्वेतकेतुने कहाहै, मुझे फिर समझाइये ।

पंचदश खण्ड

हे सोम्य । ज्वर आदिसे संतप्त मुमुर्षु या मरनेवाले पुरुषको चारों ओरसे घेरकर उसके बान्धवगण पूछाकरतेहैं– क्या तू मुझे जानताहै । क्या तू मुझे जानताहै। जबतक उसकी वाणी मनमें लीन नहीं होजाती तथा मन प्राणमें, प्राण तेजमें और तेज या उदानवायु परमात्मामें लीन नहीं होजाता तबतक वह पहचान लेताहै। फिर जिस समय उसकी वाणी मनमें लीन होजातीहै, मन प्राणमें, प्राण तेजमें और तेज परमात्मादेवमें लीन होजाताहै तब वह नहीं पहचानता। **स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं, तत्सत्यम् । स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो । इति ।**

स–जो इच्छा की उत्पत्तिसे पहिले, द्वैतरहित एकही सद्ब्रह्म था वह, य एषः—वही जो सत् ईक्षणकरके बहुरूपमें कारणरूप त्वंहै यह, अणिमा-सूक्ष्महै, एतदात्म्यम्—इसी सत् और मनरूपी कारण त्वंकारूप- इदं सर्वं—यह सब तेज जल और पृथिवी कार्यरूप प्रजाहै। तत्सत्यम्—यह कारण कार्यरूपी त्वं, सत्रूप से नित्यहै, स आत्मा-वह सत् व्यापकहै श्वेतकेतो । तत् जो

अब मरणावस्थामें, मनके सत् परमात्मामें लीन होजानेसे ततूरूप से एक अद्वैत सद्ब्रह्महै वह, त्वं--सत् और मनरूप त्वंमेंसे, मनरूप एक इच्छावृत्तिभागका त्याग करनेसे दूसराभागसत्, ततूरूपसे एक निद्वैत ब्रह्म तू, असि--है। अर्थात् मनकी निरुद्धावस्थामें तत् और त्वं में भेद नहींहै। इसप्रकार सत्को मरणकेद्वारा एक अद्वैत ब्रह्म सिद्ध कियागया। पंचदश खण्ड समाप्तहै ।

षोडश खण्डकी भूमिका

पीछेके खण्डमें आरुणिने कहाकि मरनेवाला पुरुष, सतूरूप होजाताहै। ऐसा श्रवणकर श्वेतकेतुको शंका हुई कि सभी मरतेहैं और फिर जन्मलेतेहैं इसमरणकेद्वारा सत्को प्राप्त करना किसी पुरुषार्थकी सिद्धिका हेतु नहींहै—इसीसे उसने आरुणीसे कहाकि मुझे फिर समझाइये। अब आरुणि उसे बन्ध और मुक्तिके योग्य झूठेज्ञानी और सच्चे ज्ञानीकी पहचान चोरके दृष्टान्तसे करातेहैं।

षोडश खण्ड

हे सोम्य । राजकर्मचारी, किसी पुरुषको हाथ बान्धकर लातेहैं। और कहतेहैं कि इसने, धनकी चोरीकी है। इसके लिये परशु नाम कुल्हाड़ा तपाओ । वह यदि चोरीका करनेवाला होताहै तो झूठको अन्दरमें छिपाकर परशुको पकड़ताहै तब उसका हाथ दग्ध होजाताहै और वह राजाके पुरुषोंद्वारा

पीटाजाताहै। और यदि वह चोरीका करने वाला नहीं होताहै तो वह सत्यको आवृत्तकरके परशुको ग्रहणकरताहै वह उससे नहीं जलताहै और तत्काल छोड़दियाजाताहै । वह जिसप्रकार उस परीक्षासे नहीं जलता। **एतदात्म्यमिदं सर्वं, तत्सत्यम्, स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो । इति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ।** एतदात्म्यम् वही जो सत् इच्छाकरके बहुरूपमें कारणरूप त्वंहै, इसीका रूप, इदं सर्वं—यह तेज जल और पृथिवी, कार्यरूप प्रजाहै, तत्सत्यम्—यह कारण कार्यरूपी त्वं सत्रूपसे नित्यहै, स आत्मा--वह सत् व्यापकहै, हे श्वेतकेतो । तत् जो अब मरण अवस्थामें, मनके सत्रूप परमात्मामें लीनहोजानेसे तत्-रूपसे एक अद्वैत सद्ब्रह्महै अर्थात् तत्त्वज्ञानकेद्वारा मुक्तहोगयाहै वह, त्वं-सत् और मनरूप त्वंमेंसे इच्छा या मनरूप एकवृत्ति भागका त्यागकरनेसे दूसराभाग सत्, तत्रूप लक्षणावृत्तिकेद्वारा, एक निर्द्वैत ब्रह्म तू, असि—है। अर्थात् इस अवस्थामें तत् और त्वं में भेद नहींहै। तब श्वेतकेतु उसे जानगया, जानगया । यह श्रुतियोंका अर्थहै । तात्पर्य यहहैकि चोर के समान, विषयभोगलंपट वाचकज्ञानी, मरनेकेपीछे यमकेद्वारा नरकमें अनेक प्रकारके दुख भोगकर जन्म ग्रहणकरताहै, और जिसकी सर्ववासनाएं नष्ट होगईहैं वह अचोरके समान मरनेकेपीछे पुनरावृत्तिसे रहित मुक्त होजाताहै। क्योंकि उसका यह मरण साधारण मरण नहींहै किन्तु सब मरणोंकी

अपेक्षा निर्वासनिक अन्तिम मरणहै। यहां तत्त्वमसि वाक्यमें, तत् पदसे केवल सत्‌रूप मुक्तपुरुषके साथ त्वंपदकी एकता करनी यदार्थहीहै। क्योंकि मुक्तपुरुषके समान त्वं नामी अन्य जीव भी मुक्तहोसकताहै। यहां ऐसा कहाहै वह श्वेतकेतु उसे जानगया। वह क्या जानगया—इसका उत्तर यह है कि वह एक सत्‌के ज्ञानसे सबको जानलेना। क्योंकि ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय-रूपी संपूर्ण विशेष ज्ञानोंकी सत्‌मेंही समाप्तिहोतीहै और होसक-तीहै। अन्यथा इन विशेष ज्ञानोंकी कोई अवधि नहींहै। क्योंकि संसारके पदार्थ अनन्तहैं—इससे विशेषज्ञानभी असंख्यहीहैं। अब प्रश्न यह होताहै कि श्वेतकेतुने सत्‌को मनका विषयरूपसे जाना अथवा अविषयरूपसे। इसका उत्तर केनोपनिषद्‌में ऐसाहै—

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेदसः—जो जानता-है कि सद्ब्रह्म वृत्तिका विषय नहींहै वह उसे जानताहै और जो जानताहै कि सद्ब्रह्म वृत्तिका विषयहै वह सद्ब्रह्मको नहीं जानता। क्योंकि निर्विशेष सद्ब्रह्म अनिर्वाच्यहै या वाणीका विषय नहींहै। इसप्रकार आठवें खंडसे लेकर सोलहवें खंडतक सत्‌को, १—सुषुप्तिद्वारा २—समाधिद्वारा ३—और मरणद्वारा तीन प्रकारसे एक अद्वैत ब्रह्म सिद्ध कियागया। तत्त्वमसिका अर्थ समाप्तहै और सोहलवां खंड समाप्तहै। स्मरण रहे कि आठवें खंडसे लेकर सोलहवें खंडतक तत्त्वमसि वाक्यमें तत् यह पद, सुषुप्तस्थ समाधिस्थ और मरणस्थ सत्‌का स्मारकहै जिसके साथ

त्वं की वाच्यभागके त्याग पूर्वक एकता कीगईहै । परन्तु तत् यह पद, आदित्यस्थानी निरपेक्ष ईश्वरका वाचक नहींहै । क्योंकि यह प्रकरण, केवल ज्ञान परकहै किन्तु यह उपासना परक नहींहै ।

प्रज्ञानं ब्रह्म, इस महावाक्यका अर्थ

ऐतरेयमें "आत्मा वा" इस श्रुतिसे ऐसा कहाहै कि पहिले एकही अद्वितीय आत्मा था। उसने इच्छाकी । यहां आत्मा नाम चैतन्यकाहै । क्योंकि आगे तीसरे अध्यायमें ऋषियोंद्वारा परस्परमें यह प्रश्न उठायागया कि जिसकी हमलोग उपासना करतेहैं वह यह आत्मा कौनहै । क्योंकि एकतो आत्मा वहहै जोकि पहिले एक अद्वितीयथा। दूसरा यह है जिससे देखताहै सुनताहै गन्ध लेताहै शब्द उच्चारणकरताहै स्वाद और अस्वादको जानताहै अर्थात् जो संसारीहै । ऐसा विचार विनिमयहोनेपर अन्तमें सबने यही निर्णयकियाकि एकही आत्माहै उसीकारूप यह सबहै । जो यह अंतः करणहै, यही मनहै, संज्ञान आज्ञान विज्ञान प्रज्ञान मेधा दृष्टि धृति मति मनीषा जूति स्मृति संकल्प क्रतु असु काम और वश ये सब प्रज्ञानकेही नामहैं। यही ब्रह्मा इन्द्र प्रजापति देवता पांच महाभूत आदि जो कुछभी स्थावर जंगमहै यह सब प्रज्ञासे संचालितहै तथा सबकी प्रज्ञानमें स्थितिहै और प्रज्ञानही सबका आधार या लयस्थानहै। प्रज्ञानब्रह्महै । यह श्रुतियोंका भावार्थके सहित अर्थहै ।

श्रुतिरूपी गुरुसे श्रवणकियेहुए इस वाक्यमें शिष्यको शंका हुई कि प्रज्ञा न पद तो मनके सहित चैतन्यका वाचकहै और मन सहित चैतन्य, प्रज्ञान पदका वाच्यहै । ब्रह्म नाम, मनरहित व्यापक चैतन्यकाहै । वृत्तिसहित परिछिन्न चैतन्यकी और वृत्तिरहित व्यापक चैतन्यकी एकता नहीं होसकती। अब "आचार्यवान् पुरुषो वेद" गुरुवालापुरुषही परमात्माको जान-सकताहै इस श्रुतिके अनुसार, जीवितगुरुजी, इस वाक्यमें लक्षणा करतेहैं कि हे शिष्य, मनके सहित आत्मा या चैतन्यरूपी प्रज्ञान-मेंसे एकताके विरोधि मनरूपी एकभागका त्यागकरनेसे दूसरा-भाग चैतन्य, ब्रह्मपदसे एक अद्वितीय लक्ष्यहै । प्रज्ञानं ब्रह्म, इस वाक्यमें गुरु लक्षयिता या लखानेवालाहै तथा शिष्य लक्षिता या लखनेवालाहै एवं ब्रह्म लक्षणा या लखनेकाद्वारहै, एक अद्वितीय चैतन्य, लक्ष्य या लखागयाहै या जानागयाहै। यहां ब्रह्म लक्ष्य नहींहै किन्तु ब्रह्मका स्वरूप, चैतन्यही लक्ष्यहै। स्मरण रहेकि "प्रज्ञानं ब्रह्म" इस वाक्यमें ब्रह्म यह पद, माया-रहित चैतन्यका बोधकहै किन्तु आदित्यस्थानी मायापति ईश्वर-का स्मारक नहींहै। क्योंकि यह प्रकरण केवल ज्ञानकाहोहै किन्तु यह उपासनाका नहींहै ।

अहं ब्रह्मास्मि इस महावाक्यका अर्थ

बृहदारण्यक अध्याय १ ब्राह्मण ४ की ६ और दशवीं श्रुतिका सम्पूर्ण अर्थ पीछे लिखाजाचुकाहै । अब उनमेंसे

"अहंब्रह्मास्मि" इस वाक्यका अर्थ लिखाजारहाहै । अहं इस पदका, मन या बुद्धिकेसहित सच्चिदानन्द वाच्यहै और ब्रह्म यह पद लक्षणाहै तथा अस्मि यह पद एकताका बोधकहै। अहंके वाच्यमेंसे एक मनरूपी वृत्तिभागका त्यागकरनेसे दूसरा-भाग सच्चिदानन्द, ब्रह्म पदसे एक अद्वितीय लक्ष्यहै। अर्थात् मनोवृत्तिके निरोध होनेपर सच्चिदानन्दमें द्वैत नहींहै । क्योंकि बृहदा० अ० ४ ब्राह्मण ३ श्रुति ७ "ध्यायतीव लेलायतीव" मनके ध्यान करनेपर आत्मा ध्यान करतासा होताहै और मनके चंचल होनेपर आत्मा चंचलसा होजाताहै । इस श्रुतिसे आत्मा-में कर्तापनेका कारण मन या बुद्धि हीहै। स्मरणरहेकि अहंब्रह्मा-स्मि इस वाक्यमें ब्रह्म यह पद, सच्चिदानन्दका स्मारकहै किंतु आदित्यस्थानी सर्वज्ञ ईश्वरका स्मारक नहींहै । क्योंकि यह प्रकरण केवल ज्ञान परकहै किन्तु यह उपासना परक नहींहै ।

अयमात्मा ब्रह्म, इस वाक्यका अर्थ

मांडूक्यके आरम्भमें, समस्त विश्वको ओंकाररूप बतायागया । फिर ओंकारको ब्रह्म बतायागया । इसके अनन्तर ब्रह्मको "अय-मात्मा ब्रह्म" यह आत्मा ब्रह्महै, ऐसा कहागया । तत्पश्चात् ब्रह्मात्माको चतुष्पाद बतायागया । फिर अध्यात्म विश्वको और अधिदैव वैश्वानरको ब्रह्मात्माका पहिलापाद कहागया । ऐसेही तैजसको और हिरण्यगर्भको ब्रह्मात्माका दूसरापाद बतायागया । इसके पीछे प्राज्ञको और आदित्यस्थानी ईश्वरको ब्रह्मात्माका

तीसरापाद् कहागया। फिर ब्रह्मात्माको "नान्तः प्रज्ञ" इससे अविद्या मायासे रहित चौथा पाद कहागया। फिर अध्यात्म विश्वकी, अधिदैव वैश्वानरकी और अकारकी एकता कहीगई। इसके अनन्तर अध्यात्म तैजस, अधिदैव हिरण्यगर्भ और उकारका अभेद बतायागया। फिर अध्यात्म प्राज्ञ अधिदैव ईश्वर और मकारको एक बतायागया। तत्पश्चात् अमात्राका आत्मा और ब्रह्मका अभेद बतायागयाहै। प्रियपाठको। इसप्रकार ओंकारकेद्वारा, सापेक्ष सगुणब्रह्म आदित्यस्थानी ईश्वरकी और निर्गुणब्रह्मकी आत्माके साथ अभेद उपासना बताईगईहै। इसीलिये प्रत्येक अंगरूप उपासनाके अन्तमेंभी "य एवं वेद" जो इसप्रकार उपासना करताहै, ऐसा फलरूप पाठ दियागयाहै। अयमात्मा ब्रह्म, इस वाक्यसे आरम्भकरके आत्माके विश्व आदि मनुष्यशरीर विषयक अध्यात्म तीनपाद और ब्रह्मके वैश्वानर आदि आदित्यस्थानी अधिदैव तीनपाद एवं ओंकारकी अकार आदि तीन मात्राएं, मन और मायाके सहित बताकर ईश्वरके साथ प्राज्ञका अभेद चिन्तन बतायागया। यह सगुण उपासना बताईगई। अन्तमें आत्मा नामका चौथा पाद तथा ब्रह्म नामका चौथा पाद और ओंकारकी चौथी अमात्राको मन और मायाके रहित शुद्ध बतायागयाहै। इससे निर्गुण उपासना कहीगईहै। इसप्रकार "अयमात्मा ब्रह्म" इस वाक्यमें, आत्मा और ब्रह्म ये दोनों पद शुद्धहैं। इसीसे इस वाक्यमें किसीभी प्रकारकी लक्ष-

णावृत्तिकेलिये स्थान नहींहै। क्योंकि यह उपासनाका प्रकरणहै। और ये उपासनाएं मंद और मध्यम अधिकारीकेलिये बताई गइहैं। अस्तु ; पूर्वोक्त समग्र लेखका सारांश यह हुआकि छांदोग्यके छठे अध्यायमें ब्रह्मके सत् रूपको, ऐतरेयमें ब्रह्मके चित् रूपको बृहदा० तैतरीय और मांडूक्यमें ब्रह्मके सत्यज्ञानानन्द या सच्चिदानन्दरूपको उक्त रीतिसे एकही अद्वैत सिद्ध कियागयाहै। प्रिय पाठको। मनुष्यको यह चिंता नहीं करनीचाहिये कि आदित्य-स्थानी ईश्वरने, आकाश आदि पांच स्थूलभूतोंका उत्पादन कैसे कियाहोगा और इनका वह संहारभी कैसे करेगा। हां यह चिन्ता अवश्यहोनीचाहिये कि मेरे अन्दरमेंस्थित, मेरेसे भिन्न अन्य कोई दूसरा मेरा प्रेरकतो नहींहै, जोकि मेरी सर्वथाही स्वतंत्रता नष्ट-करके मुझे ईंट प्रत्थरके समान ही बनादे। परन्तु बृहदा० की नान्योऽतोस्ति द्रष्टा-" इत्यादि श्रुतिने यह चिन्ता दूर करदीहै। श्रुतिका अर्थहै कि आत्मासे या अपनेसे भिन्न अन्य कोई द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता और अन्तर्यामी नहींहै। अर्थात एक शरीरमें दो आत्मा नहींहैं। ब्रह्मविद्याकी स्थिति—**तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वांगानि सत्यमायतनम्** इस केन० की श्रुतिसे ब्रह्मविद्याके, तप दम कर्म वेद और वेदोंके सम्पूर्ण अंग, पाद या पैर हैं। सत्य तो स्थानहै अर्थात् अन्य सब साधनहों, परंच यदि सत्य नहींहै तो उस व्यक्तिमें ब्रह्म-

विद्या नहीं टिकेगी। इसप्रकार उपरोक्त तत्वज्ञानका अधिकारी चतुष्टय साधन संपन्न व्यक्तिहै। वे चार साधन ये हैं। १–विवेक–सद्ब्रह्म सत्यहै और शब्दादि विषयात्मकसंसार, अस्थायी है, ऐसे विभागका नाम विवेकहै। २–वैराग्य–इस लोकके और ब्रह्मलोक तकके दृष्टानुश्रविक या देखे और सुनेहुए विषयोंमें ग्लानि होना वैराग्यहै। ३--शमादि षट्कसंपत्ति 'क' शम-भविष्यत्में, होनेवाले विषयभोगोंमें मनको न जानेदेना (ख) दम--इन्द्रियोंको शास्त्रनिषिद्ध शब्दादि विषयोंसे रोकना। (ग) श्रद्धा—असांप्रदायी उपनिषद् वाक्योंमें तथा तदनुसारी गुरुके वचनोंमें विश्वास। (घ) समाधान—भोगेहुए विषयोंमें मनको फिर न जानेदेना। (ङ) उपरति—स्वयं प्राप्तहुए विषयों-मेंभी उपेक्षा बुद्धि करनी। (च) तितिक्षा—शीत उष्ण आदि द्वंद्व या जोड़ेको बिना किसी प्रतिक्रिया किये सहनकरना। ४- मुमुक्षा—मेरी संसारसे मुक्ति कैसेहो। ये चार साधनहैं। इनकेद्वारा कोईभी मनुष्य, ज्ञानका अधिकारी अर्थात् ज्ञानके साधन श्रवण आदिका अधिकारी या पात्र होजाताहै। १—श्रवण—गुरुकेमुखसे "तत्वमसि" आदि जीव और ब्रह्मके अभेद बोधक वाक्योंको सुनना। स्मरण रहेकि यहां ब्रह्म नाम निर्गुण सच्चिदानन्दकाहै, किन्तु आदित्यस्थानी ईश्वरका नहीं-हैं। क्योंकि यहां उत्तम अधिकारीके लिये उपदेशहै। २—मनन—एकांतमें, जीव और ब्रह्मके अभेदको सिद्ध करनेवाली

युक्तियोंके सहित सुने हुए वाक्योंका मनन करना । इनकेद्वारा अधिकारी ब्रह्मवित् होजाताहै । ३--निदिध्यासन या सविकल्प समाधि—बुद्धि वृत्तिका स्वस्वरूप सच्चिदानन्दब्रह्ममें, मैं सच्चिदानन्दब्रह्महुं इसप्रकार शान्त प्रवाहरूपसे एकाग्र बने रहना । इसकेद्वारा ब्रह्मवित् व्यक्ति, ब्रह्मनिष्ठ होजाताहै । ४—निर्विकल्प-समाधि -मैं सच्चिदानन्दब्रह्म हुं, इस वृत्तिकाभी सर्वथा निरुद्ध होजाना, इसकेद्वारा ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति ब्रह्म होजाताहै । तात्पर्य यहहैकि विवेक आदि ज्ञानके साधनोंसे रहित अनधिकारी मनुष्यभी, श्रवण मननकेद्वारा ब्रह्मवित् होजाताहै—जैसाकि इतिहास पुराणोंसे पता चलताहैकि बड़े बड़े हिंसक राक्षसभी ब्रह्मज्ञान कथनकेद्वारा ब्रह्मवेत्ताथे। ऐसेही अबभी, विषयभोग लम्पट, अपने आश्रमधर्मसे सर्वथा विरुद्ध कार्य करनेवाला वहुतसा समाज वाचक ज्ञानी ब्रह्मवेत्ता बनाहुआहै । परन्तु जो व्यक्ति, विवेक आदि ज्ञानके साधनोंद्वारा, श्रवण मनन निदिध्यासन और समाधिकरके ब्रह्मवित् होताहै वास्तवमें वही ब्रह्मवित्है, जोकि "मनुष्याणां सहस्त्रेषु" गीताके इस श्लोकानुसार, सहस्त्र मनुष्योंमें कोई एक ज्ञान प्राप्तिकेलिये यत्न-करताहै और यत्नकरनेवाले सिद्ध पुरुषोंमेंभी कोई एक यथार्थ रूपसे आत्माको जानताहै । ऐसा ब्रह्मवित् दुर्लभ तथा पूज्यहै । कई करोड़ोंमें कोई एक होगा ।

परमधामकी प्राप्ति

प्रिय पाठकगण। इस स्वस्वरूपभूत सच्चिदानन्दरूपी परमधामका मार्ग अति सरल तथा सुगमहै। इस मार्गमें चलतेहुए समष्टिको अपने साथ घसीटनेकी आवश्यकता नहींहै। यह परमधाम, किसीकी संमिलित संपत्ति नहींहै। अतः इसका बटवारा करना नहींहै। इस परमधामको ईश्वररूपी अति गहन तथा महा भयंकर आरण्यमें भ्रमणकरके जानेकी आवश्यकता नहींहै। क्योंकि यह, वास्तवमें अपनाही स्वरूपहै। इसको ऐसे जाना होगा। जबकि मनुष्य, बाहरके पदार्थोंमें, यह सुन्दरहै और यह असुन्दरहै ऐसे कहा करताहै, तब इस वृत्तिका नाम मनहै। यह वृत्ति वहिप्रज्ञा या स्थूलवृत्तिहै। और यहां स्थूलभोगहै। क्योंकि इसके उस भोगको लोग देखरहेहैं। ऐसी जाग्रत अवस्थावाले स्वस्वरूप सच्चिदानन्द आत्माका नाम विश्वहै और यह बाहरकी ओरसे आत्माका पहिला पादहै या पादके समान पादहै। क्योंकि निर-वयव आत्माके वास्तवमें हिस्से नहीं होसकते। जब फिर मनुष्य जाग्रतके मनोराज्यमें या स्वप्नमें, अन्दरके पदार्थोंमें इष्ट या अनिष्ट वृत्ति करताहै यह अन्तः प्रज्ञा या अन्दर बुद्धि वृत्ति कहलातीहै, जोकि पहले मनके रूपमें अतिस्थूल थी। यहां सूक्ष्म भोगहै, क्योंकि इसके उस भोगको बाहरके लोग नहीं देख सकते। इस स्वप्न अवस्थावाले आत्माका नाम तैजसहै, और यह बाहरकी ओरसे आत्माका या अपना दूसरा पादहै,

जोकि पहिले विश्वरूपको धारण कियेहुए था। यह पुण्य और पापका करनेवाला तथा उसके सुख और दुखरूपी फलोंका भोगताहै। "द्वा सुपर्णा" इसमंत्रमें बतायाहुआ यह एक पक्षी हैं। जबफिर मनुष्य, मनोराज्य या स्वप्नको त्यागकर केवल अस्मि–हुँ इस सामान्यवृत्ति वाला होताहै, तब इस वृत्तिका नाम प्रज्ञानघन या विशेषज्ञानोंका एकीभावहै, जोकि यह वृत्ति पहिले बुद्धिके रूपमेंथी। इसवृत्तिका नाम कारणशरीरभीहै। क्योंकि आत्मा, इस वृत्तिकेद्वारा सूक्ष्मशरीरकी उत्पत्ति करताहै। इस वृत्तिका नाम आनन्दमयभीहै। क्योंकि आत्मा, इस वृत्तिके द्वारा आनन्द प्रधान होताहै। इस वृत्तिका नाम अविद्याभीहै। क्योंकि आत्मा, इस वृत्तिकेद्वारा अपने वास्तविक स्वरूपको जानता नहींहै। इस वृत्तिका नाम चेतोमुखभीहै। क्योंकि आत्मा सुषुप्तिके अन्तमें, इस वृत्तिद्वारा स्वप्न जाग्रतरूपी चेतनाको प्राप्त होताहै। इसलिये यह चेतनाका द्वारहै। आत्मा, इस वृत्तिकेद्वारा आनन्दभुक्है या अपने स्वरूपभूत आनन्दको भोगताहै। क्योंकि यह आनन्द, किसी पुण्यका फल न होकर अपनाहीहै। ऐसी सुषुप्तिकी आदि अवस्थावाले आत्माका नाम प्राज्ञहै। और यह बाहरकी ओरसे आत्माका या अपना तीसरा पादहै, जोकि इससे पहले तैजस-नामवाला जीवथा। यह प्राज्ञ, अपने कारण कार्यरूपी शरीरका नियन्ताहोनेसे ईश्वरहै। "द्वा सुपर्णा" मंत्रमें कहागया यही ईश्वररूपी दूसरा पक्षीहै, जोकि पुण्य और पापके

सुख और दुख रूपी फलोंका भोक्ता न होताहुआ केवल द्रष्टाहै। जब फिर मनुष्य, इस मैं वृत्तिकोभी त्यागकर सुषुप्तिकी मध्य या गाढ़ सुषुप्तिमें सत् रूपहोजाताहै, तब उसी मनरूपी अविद्याके स्वस्वरूप सत्में लीनहोजानेसे न वहिप्रज्ञहै, न अन्तः प्रज्ञहै, न उभय प्रज्ञावालाहै, न प्रज्ञानघनहै, न चेतनहीहै, न जड़है, न दृष्टहै, इसीसे न व्यवहारका विषयहै, अग्राह्यहै, चिन्हसे रहित-है, चिन्तनका अविषयहै, एक अपना आपही प्रमाणहै या द्वैतरहितहै, प्रपंचका उपशमहै, शान्तहै या सर्वकल्पना शून्यहै, शिवहै या कल्याणरूपहै, अद्वैतहै या मनरूपी द्वैत या जीव और ईश्वररूपी द्वैत नहींहै, इसको ज्ञानीलोग, बाहरकी ओरसे चौथा या तुरीय अवस्थावाला आत्मा मानतेहैं, जोकि पहिले प्राज्ञरूपी ईश्वर था। वह आत्मा विज्ञेय या जाननके योग्यहै। ऐसी मन या बुद्धिकी रहित अवस्थामें आत्माको, भगवान् बुद्धका अनुयायी कोई एक शून्य मानताहै। न्याय और वैशेषिक ये दोनों शास्त्र, जड़ और द्रव्य मानतेहैं। सांख्य और योग ये दोनों शास्त्र, सत् और चेतन मानतेहैं। अद्वैतसिद्धान्तके अनुयायी वेदान्तीलोग, "ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा" आनन्दमयरूप पक्षीका ब्रह्म पुच्छ या आधारहै, इस तैतरीय श्रुतिसे आत्मा-को सत् चित् और आनन्दरूप मानतेहैं। यह अवस्था निर्विकल्प होनेसे अनिर्वाच्यहै। इसीसे सबलोग, अपनी २ वृत्तिसे आत्मा-की भिन्न २ कल्पना करतेहैं। अब उपरोक्त समग्र लेखका वास्त-

विक तात्पर्य समझनाचाहिए कि ऐसेतो यह जीवमात्रकीही स्वाभाविक अवस्थाहै एवं अपना स्वरूपहोनेसे यही परमधामहै, तोभी इससे दुखकी अत्यन्त निवृत्ति और परमसुखकी प्राप्ति-रूपी पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं होती। परन्तु पूर्वोक्तविवेक वैराग्य आदि साधनोंसे सम्पन्नहोकर जोभी मनुष्य, ब्रह्मविद्याकेद्वारा अपनेको मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ ऐसे ब्रह्मरूप या सर्वात्मरूप अनुभव करलेताहै वह राग पूर्वक शब्दादि विषयोंको न भोग-ताहुआ, प्रारब्धकर्मका भोगसे क्षय होजानेपर तथा वाह्य संसारमें राग द्वेषके सर्वथाही छूट जानेपर, साथ साथ अपने स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरमें रागका अत्यन्ताभावहोकर अन्तमें प्राणोंका वियोग होजानेपर वास्तविक स्वस्वरूपावस्थिति मुक्तिको प्राप्त करताहै, या युंकहोकि वह ब्रह्मनिष्ठ, एकपाद सगुणब्रह्मताको त्यागकर विदेहकैवल्यमुक्तिमें, त्रिपाद विशुद्ध निर्गुण सच्चिदानन्द ज्ञेयब्रह्मरूपसे स्थित होताहै।

बन्ध मोक्षके नित्य और अनित्य पर विचार—

सगौड़पादीयाथर्ववेदीय मांडूक्योपनिषदके चतुर्थ प्रकरणमें श्लोक३०

अनादेरन्तवत्त्वं च संसारस्य न सेत्स्यति ।
अनन्तता चादिमतो मोक्षस्य च न सिध्यति ॥

इसका अर्थ यहहै कि संसारको अनादिमानकर फिर उसकी समाप्ति मानलेनी युक्तिसंगत नहींहै, और मोक्षको आदिवालो

अर्थात् उत्पत्तिवाली मानकर फिर उसे अनन्त अर्थात् नित्य मानना यहभी सिद्ध नहीं होताहै या उचित नहींहै । भावार्थ यह हुआकि आदिके साथ अन्तका और अनादिके साथ अनन्त-काहा सम्बन्ध या मेलहै । वैतत्थ्य प्रकरणमें श्लोक ३२—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥

न प्रलयहै और न उत्पत्तिहै तथा न बंधाहुआहै एवं न साधक-है और न मुमुक्षुहै तथा न मुक्तहै यही परमार्थहै। सारांश यह हैकि ब्रह्मात्मामें, इसप्रकारके अनेकोंही विवर्त होतेरहतेहैं इसका वास्तविक संबन्ध किसीके साथ नहींहै । योगवासिष्ठके तीसरे उत्पत्ति प्रकरणमें वसिष्ठजीने कहाहैकि हे रामजी । समुद्रमें तरंगोंके समान आत्मामें स्पन्दका होना अनिवार्यहै और इसको निवृत्त करना परम पुरुषार्थहै । प्रिय पाठको। ऐसे उल्लेखोंसे यही सिद्धहोताहैकि केवल सच्चिदानन्दब्रह्मही स्व-रूपसे अनादि और अनन्तहै । उसमें इच्छारूपी अविद्याशक्ति तथा उसका कार्य उत्पत्ति प्रलय ईश्वर जीव बन्ध और मोक्ष आदि जितनीभी कल्पनाहै वह सब प्रवाहरूपसे अनादि और अनन्त है, किन्तु वह स्वरूपसे आदि और अन्तवालीहै । क्योंकि अत्य-न्त असत् शशविषाणकी और बन्ध्यापुत्रकी उत्पत्ति तथा उसका विनाश नहीं देखागयाहै। परन्तु जिसकी प्रतीति होरहीहै वह वस्तु अत्यन्त असत् नहींहै । अब चाहेतो इस इच्छाशक्तिको सत्

और असत्से विलक्षण अनिर्वचनीय कहकर मिथ्या मान-लीजिए अथवा इसको स्वप्नदृष्टान्तसे असत् बतादीजिये। परन्तु यह इच्छाशक्ति और इसका कार्य, अत्यन्त असत् नहीं हो-सकता। इसीसे यह कारण कार्यात्मक प्रपंच, प्रवाहरूपसे अनादि और अनन्तहै, किन्तु यह स्वरूपसे आद्यन्त या अनित्यहै। जबकि यह इच्छाशक्ति, सुषुप्तिकी अन्तिम अवस्थामें या निर्विकल्पसमाधिके अन्तमें अथवा महाप्रलयकी अन्तिम अवस्था-केसमय ब्रह्मात्मामें प्रकट होतीहै, यही इसकी आदि उत्पत्ति या आरम्भहै। जब फिर यह प्रकृति, सुषुप्तिकी मध्य अवस्थामें या निर्विकल्पसमाधिमें या महाप्रलयकी मध्य अवस्थाकेसमय, अपने अस्मि, ऐसे आच्छादकपनेको त्यागकर अपने अधिष्ठान सच्चिदानन्दब्रह्ममें लीनहोजातीहै—यही इस अविद्याशक्तिका अन्त विनाश अभाव या ब्रह्मात्मासे निवृत्तहोजानाहै। इसीसे महाप्रलयकी अवस्थामें 'सदेव" इस श्रुतिने तथा "आत्मा वा" इस श्रुतिने सच्चिदानन्दको स्वगत आदि तीन भेदोंसे रहित शुद्ध ब्रह्म मानलियाहै। पूर्वोक्त तीन अवस्थाओंके अन्तमें अस्मि—हूँ ऐसी यह अविद्याशक्ति ब्रह्ममें उत्पन्न हुई, इससे यह आदिमान्। और इन अवस्थाओंके समय यह, ब्रह्मात्मामें लीन होगई, अतः यह स्वरूपसे सान्त होगई। परन्तु वास्तवमें यह सान्त नहीं हुई। क्योंकि इन अवस्थाओंके अन्तमें यह फिर ब्रह्मसे उत्पन्न होतीहै— इसीसे यह इच्छारूपी अविद्याशक्ति प्रवाह

रूपसे अनादि और अनन्तहै। विश्वकी कोईभी वस्तु, अनादि और सान्त या अन्तके सहित नहींहै। घटकी उत्पत्तिहोनेसे मृतिकामें जो घटका प्रागभाव था या न होनाथा उसका नाश होगया। परन्तु उसी घटके फूटकर चूर्ण होजानेसे मृतिकामें फिर प्रागभावकी उत्पत्ति होगई। वह प्रागभाव चाहे मृतिकाके किसी भी घट आदि कार्यकाहै। यह नियम नहीं कि वह घटकाही प्रागभावहो। परन्तु वह उत्पन्न होगया, क्योंकि जिस वस्तु-का नाशहै उसका जन्म अवश्यहै और जिसका जन्महै उसका नाश होना अटलहै। इसप्रकार प्रागभावभी अनादि और सान्त नहींहै। इसलिये ब्रह्मसे बिना संसारकी प्रतीतिवाली सभी वस्तुएं स्वरूपसे आदि और अन्तवालीहैं किन्तु वे प्रवाहरूपसे अनादि और अनन्तहैं। इसीप्रकार अब कैवल्यमोक्षको लीजिये। जिस समय कोई मुमुक्षु मनुष्य, अन्य सब वृत्तियोंके व्यवधान रहित-में सच्चिदानन्दब्रह्महूं ऐसी धारणाकरताहै, तब यही वृत्ति ज्ञाना-ग्निहोकर संचितकर्मोंका दाहकरदेतीहै, अर्थात् उन्हें दबादेतीहैं। उनको दबादेनाही उनका दाह करनाहै। फलाभिसंधीरहितहोनेसे क्रियमाणकर्मोंका उसे स्पर्श नहीं होता। तथा प्रारब्धकर्मकी भोग कर समाप्तिहोजानेसे, मैं ब्रह्महूं यह वृत्ति स्वाश्रय सच्चिदानन्द ब्रह्ममें लीनहोजातीहै। यही इच्छाशक्तिका अत्यन्ताभावहै या अत्यन्त निवृत्तिहै। अत्यन्ताभाव शब्द यहां चिरकालवाची समझनाचाहिये। जो महापुरुष, मायाशक्तिका तीनकालोंमेंही अभाव

बतारहेहैं—उनका वह कथन, मायाके अत्यन्ताभावके अभिप्रायसे नहींहै—वे तो ऐसे वाक्योंद्वारा जिज्ञासुकेलिये माया या इच्छाशक्ति-की निवृत्तिका सरल सुगम साधन बतारहेहैं। क्योंकि विश्वभरमें जिस वस्तुकीभी प्रतीति अनुभवमें आरहीहै वह अत्यन्त असत् नहींहै—इसीसे उसका अत्यन्ताभावभी नहींहै। इच्छारूपी अविद्याशक्ति तथा इसके कार्य ईश्वर जीव बन्ध और मोक्ष आदिकी सर्व सम्मत प्रतीति होरहीहै। अतः इसका अत्यन्ता-भाव कहना बड़ी भूल करनीहै। अस्मि यह अविद्याशक्तिहै और इसका यही रूप ब्रह्मात्माका आच्छादकहै। कोई व्यक्ति, अपने पुरुषार्थसे कुछ समय तक इसके आच्छादकरूपको आत्मासे अलग करसकताहै। परन्तु इसको इसके आश्रय ब्रह्मात्मासे दूर करनेकी न आजतक किसीकी सामर्थ्य हुई न हैं और न होवेगी। इसीलिये आचार्योंने पूर्वोक्त "अनादेः" इस श्लोकसे संसारको अनादि मानकर उसका अन्त माननेवालोंके तथा मोक्षको आदि वाली मानकर उसको अनन्त या नित्य मानने वालों के पक्षमें असंभव दोष बतायाहै। क्योंकि इससे ब्रह्मात्मामें, अपूर्व-ता आजानेसे यह परिणामी विकारी और अनित्य बनजाताहै। आचार्योंने अपने पक्षमें इस दोषके निवारणार्थ न "निरोधो" ऐसे श्लोकोंद्वारा आत्मामें बन्ध और मोक्षको परमार्थसे नहीं मानाहै अर्थात् स्वरूपसे नित्य नहीं मानाहै। कल्पित मानाहै या स्वरूपसे अनित्य मानाहै। परिशेषतः आचार्योंके ऐसे कथनका

वास्तविक अर्थ यही बनताहै कि ब्रह्मात्मा, स्वरूपसे अनादि और अनन्तहै। असिम रूपा अविद्याशक्ति तथा इसका कार्य बन्ध और मोक्ष आदि, स्वरूपसे आद्यन्त या अनित्यहैं। तथा यह प्रवाहरूपसे अनादि और अनन्तहै। इससे ब्रह्मात्मा, नित्य निर्विकार तथा नित्यमुक्त बनारहताहै और बन्ध मोक्षकी व्यवस्थाभी निर्दोष और निर्विवाद कल्पित सिद्ध होजातीहै। इसलिये आचार्योंद्वारा "अनादेः" ऐसे श्लोकोंमें, संसारकी अनादि और अन्तता तथा मोक्षकी आदि और अनन्तता मानने वालोंके पक्षका खंडन करना युक्तहीहै। अस्तु। ऐसेतो पूर्वोक्त युक्तियोंद्वारा कैवल्यमुक्तिसे भी पुनरावृत्ति सिद्ध होतीहै। तोभी यह पक्ष, श्रुति और शास्त्रोंको मान्य नहींहै। इसे प्रौढिवाद आदि के रूपमें समझना चाहिये। क्योंकि श्रुति और शास्त्र, कैवल्य मुक्तिसे कर्म तथा वासना रहित बुद्धिकी पुनरावृत्ति नहींमानते। इसीलिए श्रुति और शास्त्रोंके सम्मत, बन्ध अनित्यहै और मोक्ष नित्यहै, यही सिद्धान्त उपादेयहै।

अस्तु! मनुष्यके लिये, सुषुप्ति अवस्थाकी अपेक्षा महाप्रलयकी अवस्था श्रेष्ठहै। महाप्रलयसे सविकल्पसमाधि पवित्रहै, सविकल्पसमाधिसे उसका फलरूप, ब्रह्मलोकमें प्राप्तहोनेवाली क्रममुक्ति शुद्धहै, और क्रममुक्तिसे निर्विकल्प समाधिको प्राप्त करना उत्तमहै। तथा निर्विकल्प आत्मज्ञान समाधिसे उसका फलरूप स्वस्वरूपावस्थिति विदेहकैवल्यमुक्ति सर्वोत्तमहै।

क्योंकि श्रीमद् भगवद्गीता अ० १४ श्लोक २ में ऐसाहैकि

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥

आत्मज्ञानद्वारा कैवल्यमोक्षको प्राप्तहुए महापुरुष, इस सृष्टिमें जन्म आदि दुखोंसे और महाप्रलयकी संनिधिमें अनावृष्टि और अतिवृष्टि आदिकेद्वारा होनेवाले महाकष्टोंसे वच जातेहैं । अतः यह कैवल्यमोक्षमें सर्वोत्तमताहै तथा वह निरपेक्षभीहै ।

सापेक्षजीवन्मुक्तियां

१–जिस समय, सच्चिदानन्द जीवात्माकी बुद्धिवृत्ति, अपने अभिलषित पदार्थके दर्शन प्राप्ति और भोगद्वारा, सत्वगुणकी वृद्धिसे एकाग्र या प्रसन्नहोतीहै, तब यह जीवात्माकी जीवन्मुक्ति-है या जीतेहुए दुखनिवृत्ति और सुखकी प्राप्तिरूप मोक्षहै। २–या वह वृत्ति, सुषुप्तिकी आदि और अन्तिम अवस्थारूपी आनन्दमयकोशमें एकाग्र होतीहै । ३- या वह वृत्ति, सविकल्प समाधिमें स्थिर होतीहै । ४--या जिससमय, सभी जीवोंकी बुद्धिवृत्तियां, महाप्रलयकी आदि और अन्तिम अवस्थामें एकाग्र होतीहैं तब वे समस्त जीवोंकी जीवन्मुक्तियांहै । ५--या वह बुद्धिवृत्ति, ब्रह्मलोकमें सत्यकाम सत्यसंकल्प और अणिमा आदि रूप ब्राह्म ऐश्वर्यके भोगसे तृप्तहोतीहै, तब वह सच्चिदानन्द आत्माकी जीवन्मुक्तिहै। इसप्रकार सच्चिदानन्द आत्माकी ये

पाँचों सापेक्ष जीवन्मुक्तियांहैं । अर्थात् एक दूसरीसे छोटी बड़ी जीवन्मुक्तियांहैं ।

सापेक्ष विदेह कैवल्य मुक्तियां

१-जिससमय, सच्चिदानन्द जीवात्माकी अविद्या या सामान्य इच्छा, सुषुप्तिकी मध्य अवस्था या गाढ सुषुप्तिमें, स्वाश्रय सच्चिदानन्दमें श्रमकी निवृत्यर्थ लीनहोजातीहै--तब यह सच्चिदानन्द, ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय रूप त्रिपुटीसे रहित निर्गुण शुद्ध अद्वैत ब्रह्म होजाताहै, यह आत्माकी विदेहकैवल्यमोक्षहै, अर्थात् त्रिपुटीके अभावसे दुखनिवृत्ति पूर्वक सुखकी प्राप्ति होनी मोक्षहै । २-या जब यह मनोवृत्ति, मरणके समय स्वाश्रय सच्चिदानन्दमें लीन होजातीहै, तब यह जीवात्मा त्रिपुटीके अभावसे अद्वैतब्रह्म होजाताहै यह विदेहकैवल्य मुक्तिहै । ३--या यह बुद्धिवृत्ति, गुरुमुखसे श्रवणकियेहुए वेदान्तवाक्योंके मनन और निदिध्यासनद्वारा, सूक्ष्महोकर निर्विकल्पसमाधिके समय स्वाश्रय सच्चिदानन्दमें लीनहोजातीहै तब यह जीवात्मा, त्रिपुटीके अभावसे अद्वैतब्रह्म होजाताहै, यह जीवात्माकी विदेह कैवल्यमुक्तिहै । ४--अथवा जब ये कारणशरीर आनन्दमयकोश या सामान्य इच्छारूपी वृत्तियां, महाप्रलयकी मध्य अवस्थाके समय स्वाश्रय सच्चिदानन्दमें लीनहोजातीहैं, तब यह समस्त प्राणधारी त्रिपुटीके अभावसे स्वगत आदि भेदोंसे शून्य चतुष्पाद विशुद्ध निरपेक्ष निर्गुण ब्रह्म होजाताहै, तब यह समस्त जीवों-

की विदेह कैवल्य मुक्तिहै। सच्चिदानन्द जीवात्मकी ये चारों सापेक्ष विदेहकैवल्यमुक्तियांहैं। सापेक्ष नाम, एक दूसरीसे छोटी बड़ीकाहै। इसमें प्रमाण--ब्रह्मसूत्र अ० ३ पाद २ सूत्र ७ **तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च।** शांकरभाष्य। पंचदशीके योगानन्द प्रकरणमें श्लोक ४४।४५।५६।१६। छांदोग्यकी श्रुति-"सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।" इन प्रमाणोंको पहिले प्रकरणमें देखिये। और छांदोग्यके छठे अध्यायकोभी देखिये। सांख्य दर्शन अ० ५ सूत्र ११६ **समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता।** जीवात्मा, समाधिमें सुषुप्तिमें और मोक्षमें ब्रह्मरूप होजाताहै। ब्रह्मसूत्र अ० ३ पाद २ सूत्र १० **मुग्धे अर्धसंपत्ति परिशेषात्।** शांकरभाष्यका संक्षिप्त अर्थ--जीवकी चारही अवस्थाएंहैं। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति और मरण। इसलिये इन्हीं चारों अवस्थाओंके बीचमें, मूर्छा अवस्थाको गिनलेना चाहिये। ऐसा पूर्वपक्षहोनेपर व्यासजी अब इसका उत्तर कहतेहैं। परिशेषात् अर्ध संपत्ति-र्मुग्धतेत्यवगच्छामः। निः संज्ञत्वात् संपन्न इतरस्माद्वै लक्षण्या-दसपन्न इति। अन्तमें अर्ध संपत्ति मुग्धताहै हम ऐसा मानतेहैं। चेतना रहितहोनेसे संपन्नहै और सुषुप्तिसे विलक्षणहै अतः वह असंपन्नहै। अर्थात् जीवात्मा, मूर्छा अवस्थामें आधा ब्रह्म होता-है, पूर्णब्रह्म नहीं होता। प्रिय पाठको। मैंने इस सूत्रके आधार-परही मूर्छाको सापेक्ष विदेहकैवल्यके अन्तर्गत ग्रहण नहीं कियाहै।

निरपेक्ष जीवन्मुक्ति

जिससमय, जीवात्मा, सुषुप्तिकी मध्य अवस्था और निर्विकल्प-समाधि, अपनी इन दोनों अद्वैतब्रह्मरूप सापेक्ष विदेहकैवल्य अवस्थाओंको जाग्रत अवस्थामें अनुभवकर अपनेको अज-अविनाशी नित्यानन्दरूप मानताहुआ कारणशरीर या आनन्द-मयकोशसे लेकर समस्त वाह्यपदार्थोंकी लाभ और हानिमें अपनी लाभ हानि नहीं मानता, अर्थात् हर्ष शोक आदि द्वन्द्वोंसे ऊपर उठ जाताहै-यही अवस्था जीवात्माकी निरपेक्ष जीवन्मुक्ति अवस्था-है। इसप्रकार अद्वैत ब्रह्मरूप सापेक्ष विदेहकैवल्य मुक्तिके पीछे जीवात्माकी निरपेक्ष जीवनन्मुक्ति होतीहै निरपेक्ष नाम सबसे बड़ी, जीवन नाम इसी शरीरमें, मुक्तिका अर्थहै दुखकी निवृत्ति पूर्वक सुखकी प्राप्ति होनी। जीवन्मुक्ति, विदेह कैवल्यके समीप होनेसे मुक्ति कहीजातीहै, वास्तवमें यह मुक्ति नहींहै। किंतु इसकी फलस्वरूप सच्चिदानन्दमें अस्मि वृत्तिकी लीनावस्थाही वास्तवमें मोक्षहै।

निरपेक्ष विदेहकैवल्यमुक्तिका अधिकारी

जिससमय, ब्रह्मनिष्ठकी मैं सच्चिदानन्दब्रह्महुं ऐसी विद्यावृत्ति, स्वस्वरूप सच्चिदानन्दब्रह्ममें निमग्न रहतीहुई उसकी इच्छाके विरुद्ध अन्य किसीभी संकल्पको तथा मनोराज्यको नहीं करती, उसके सर्वथाही स्वाधीन होजातीहै। अर्थात् ब्रह्मसूत्र ।४।१।१३।

"तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेशविनाशौ । सूत्र १४ इतरस्याप्येवमश्लेशः पाते तु । इन सूत्रोंके प्रमाणोंसे, ब्रह्मज्ञानहोनेपर पूर्व संचित पाप तथा पुण्यकर्मोंका नाश होजाताहै और अबके कियेजानेवाले पुण्यपापकर्मोंका ज्ञानवानको स्वार्थ न होनेसे संबन्ध नहीं होता, तब वह निरपेक्ष विदेहकैवल्यमुक्तिका अधिकारी या पात्र बनजाताहै ।

अब यहां प्रश्न यह होताहैकि ब्रह्मा विष्णु और शिवजी, जोकि उच्चकोटिके देवता मानेगयेहैं—इनके जो वर्तमानशरीरहैं ये इन्हें आत्मज्ञान होजानेके अनन्तर मिलेहैं अथवा आत्मज्ञानहोनेसे पहिले मिलेहैं । १ यदि ये शरीर इन्हें ज्ञानवान् होनेके अनन्तर मिलेहैं तबतो आत्मज्ञानसे विदेहकैवल्यकी प्राप्ति कहनेवाली श्रुतियां तथा ब्रह्मसूत्र ।४।१।१६। "भोगेन" इस सूत्रके सहित पूर्वोक्त दोनों सूत्र व्यर्थ होजातेहैं । २–यदि इनको ये शरीर आत्मज्ञानसे पहिले मिलेहैं और इनको त्रिपुटीकी अभावरूपा कैवल्पमुक्तिकी कभी प्राप्तिही नहीं होतीहै तबभी इन तीनोंसूत्रोंको व्यर्थता आगईहै । इस प्रश्नका उत्तर यहहै कि इनको ये शरीर आत्मज्ञान होनेसे पहिले मिलेहैं । क्योंकि इन्होंने इन पदोंकी प्राप्तिकेलिये ही उपासना की थी । इनको ये ही पद, आत्माज्ञान होनोंमें प्रतिबन्धकथे । अब ज्ञानवान् होनेपरभी ब्रह्मसूत्र ।३।३।३२ यावद-

धिकारमवस्थितिराधिकारकाणाम् ॥ इस सूत्रके अनुसार, जितनाभी अधिकारी वर्गहै, किसीके वर या अभिशापके कारण, अनेक शरीरोंको धारणकरके भी अपने अधिकार तक बंनारहेगा। अधिकार समाप्त होनेसे सबके सब त्रिपुटीके अभाव से स्वस्वरूपावस्थानरूप विदेहकैवल्यको प्राप्त होजावेंगे। इसलिए श्रुतियों और सूत्रोंको व्यर्थता नहींहै।

निरपेक्ष विदेहकैवल्यमुक्ति

छांदोग्य अ० ६ खंड १४ श्रुति २ "तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये अथ संपत्स्य इति" उस ब्रह्मात्मवित्को (निरपेक्ष) विदेहकैवल्यकी प्राप्तिमें तबतक चिरहै जबतक वह प्रारब्धकर्मोंको भोगद्वारा समाप्त नहीं करदेता। प्रारब्धकर्म भोगकी समाप्तिके अनन्तर अद्वैतब्रह्मरूप कैवल्यको प्राप्त-होताहै। ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद २ सूत्र १६ **भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा संपद्यते ॥** जिन पुण्यपापरूपी कर्मोंने अपना सुखदुखरूपी फलदेना आरम्भ कियाहै उनको भोगद्वारा समाप्तकरके 'ब्रह्मात्मवित्' विदेहकैवल्को प्राप्तहोताहै। बृहदा० अ० ४ ब्राह्मण ४ में श्रुति-"अथाकामयमानो यो अकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामंति ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति"। और जो संसारी कामना न करताहुआ कामना रहित निष्काम प्राप्तकाम तथा आत्माकीही कामनावालाहै

उसके प्राण कहीं गमन नहीं करते (अन्य श्रुतिहै "अत्रैव समवनीयन्ते" यहांही लीनहोजातेहैं) वह ब्रह्महोताहुआही ब्रह्मको प्राप्त होताहै। बृहदा० अ० ४ ब्राह्मण ३ में श्रुति- "सलिल एको द्रष्टा अद्वैतो भवति" वह ज्ञानीजन, जलके समान शुद्ध तथा द्वैतसेरहित होताहै। इत्यादि श्रुतियों सूत्र तथा "स्वाप्ययसंपत्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि ।" ब्रह्म. ४।४।१६। इस सुत्रके अनुसार, सुषुप्ति और मोक्षमें विशेष ज्ञानका अभाव होताहै। प्रश्नोपनिषद् प्रश्न ६ में सुकेशाद्वारा पिप्पलादमुनिसे षोडशकलायुक्त पुरुष पूछाजानेपर पिप्पलादजीने उससे कहा कि इस शरीरमें ही षोडश या सोलहकलावाला पुरुषहै। इसकी प्राण और श्रद्धा आदि षोडश कलाएं जोकि इसने रचीहैं। जैसे बहती हुई नदियां, समुद्रहीहै उद्गमस्थान जिनका, वे नदियां समुद्रमें मिलकर अस्त होजातीहैं-इनके गंगा आदि नाम और शुक्ल आदि रूप नष्ट होजातेहैं तब वह समुद्रहै ऐसा कहाजाताहै-इसीप्रकार अहंवृत्ति द्वारा लक्षित आत्मा पुरुषकी ये प्राण आदि षोडश कलाएं पुरुषहीहै आश्रय जिनका वे अन्तमें ब्रह्मनिष्ठ पुरुषको प्राप्तहोकर अस्त होजातीहैं-इनके नाम और रूप मिट जातेहैं, तब यह पुरुषहै ऐसा कहाजाताहै। "स एषोऽकलो अमृतो भवति" वह यह पुरुष कलारहित या निरवयव अमर होजाताहै—इस श्रुतिके अनुसार, प्रारब्ध कर्मोंकी भोगद्वारा समाप्ति होजानेसे, प्राणोंका किसी लोक

विशेषमें गमन न करके यहांही लीन होजानेपर, अहंब्रह्मास्मि वृत्तिका स्वाश्रय सच्चिदानन्दब्रह्ममें वासना रहित विलीन होजाना-ही सच्चिदानन्द आत्माकी स्वस्वरूपसे स्थितिरूप निरपेक्ष विदेह कैवल्यमुक्तिहै। निरपेक्ष नाम सबसे बड़ी, विदेहका अर्थहै— ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेयरूप त्रिपुटिका अभाव, कैवल्यका अर्थहै— आत्माका अकेले होना या निखर जाना, मुक्ति नाम, दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिपूर्वक सुखरूप होजानेकाहै। क्योंकि "भूमैव सुखम्" भूमा नाम ब्रह्म या व्यापककाहै वही सुखरूपहै, इस छांदोग्य० अ० ७ की श्रुतिके प्रमाणसे अद्वैत ब्रह्मरूप मोक्ष सुखरूपहै।

इसके विषयमें कठ उप० अ० १ वल्ली २ श्रुति १४ में कहाहै—

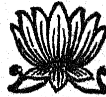
"क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो-वदन्ति—ज्ञानीलोग, उस परमपदरूपी विदेहकैवल्य मुक्तिको छुरेकी तीक्ष्ण धाराके समान दुःखसे प्राप्तकरनेके योग्य दुर्गम बतारहेहैं। इसलिये यह निरपेक्ष विदेहकेवल्य मुक्ति, अत्यन्त दुर्लभहै। इसप्रकार, ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषकी, एकपाद सगुणब्रह्मता-को त्यागकर, स्वस्वरूप त्रिपाद विशुद्ध निर्गुणसच्चिदानन्द ज्ञेयब्रह्म रूपसे स्थिति होनी, निरपेक्ष विदेह कैवल्य मोक्षहै।

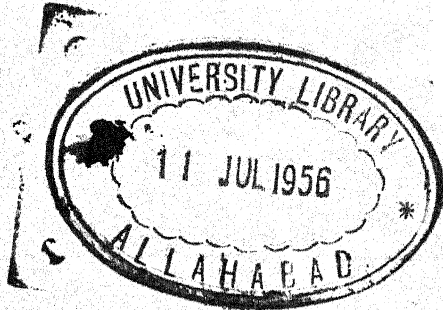
इसप्रकार वैदिक ब्रह्म विचारमें ज्ञेयब्रह्म नामका आठवां प्रकरण समाप्त हुआ।

क्षितीन्दु व्योम नेत्रेऽब्दे वैक्रमे च प्लवंगमे ।
माघमासे पौर्णिमायां ग्रन्थमेतत्समाप्तमोम् ॥

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य दण्डी स्वामी रामतीर्थ विरचितं वैदिक ब्रह्म विचार पुस्तकं सम्पूर्णम् ॥

कार्तिक वि० सं० २०१२





मुद्रक :—दी सैंट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस लुधियाना ।
प्रकाशक :—श्री मुरारिलाल जी सोनी मुहल्ला सोधियां लुधियाना ।